

एक नई आजादी—भारत विकास परिषद् एक अराजनैतिक संस्था है अतः इसके द्वारा प्रकाशित पत्रिका को भी अराजनैतिक होना चाहिये। ज्ञानप्रभा प्रायः राजनीति पर टीका टिप्पणी एवं लेख प्रकाशित करने से बचती रही है। किन्तु कभी-कभी राजनीति के क्षेत्र में कुछ ऐसी घटनाएँ एवं परिवर्तन हो जाते हैं जो समस्त राष्ट्र एवं लोकतंत्र को प्रभावित करते हैं। इन पर कुछ लिखना दलगत राजनीति में दखल अन्दाजी नहीं कहा जायेगा।

इस वर्ष 15 अगस्त को देश आजादी के 64 वर्ष पूरे कर रहा है। व्यक्ति के जीवन में यह एक लम्बी अवधि है एवं इतने वर्षों में वह प्रौढ़त्व की सीमा में प्रवेश कर जाता है। किन्तु राष्ट्र के जीवन में यह एक छोटी सी अवधि है, विशेषकर भारत जैसे प्राचीन इतिहास वाले देश के लिये। यदि पिछले दो वर्षों के परिदृश्य पर दृष्टिपात करें तो प्रत्येक प्रबुद्ध नागरिक अपने को उद्वेलित एवं निराश महसूस करता है। घपलों घोटालों ने नये कीर्तिमान स्थापित किये हैं। पैसा बनाने और दौलत एकत्र करने की अंधी दौड़ में केवल राजनीतिज्ञ ही नहीं उद्योग पति, नौकरशाह एवं यहां तक तथा कथित साधु संत भी सम्मिलित हो गये लगते हैं। किन्तु इस सब अंधकार के मध्य में कुछ आशा की किरणें भी दिखलाई दी हैं जिनसे आशा बंधती है कि सब कुछ नष्ट नहीं हुआ है।

पिछले दो वर्षों में राज्यों में जो चुनाव हुए हैं उनमें कुछ नई किन्तु स्वस्थ प्रवृत्तियों उभरकर सामने आई हैं। विशेष रूप से बिहार, तमिलनाडु एवं पश्चिमी बंगाल ने हमारे लोकतंत्र के लिया नया मार्ग प्रशस्त किया है। बिहार जातिवाद का गढ़ कहा जाता है। वहां राजनीति ही नहीं जीवन की हर गतिविधि जाति के आधार संचालित होती है। एक विशेष राजनीतिक दल एवं एक विशेष परिवार ने जातिगत एवं कभी-कभी साम्प्रदायिक भावनाओं को उभारकर उनका लाभ उठाया एवं पन्द्रह वर्ष से अधिक समय तक शासन किया। उस राजनैतिक दल एवं परिवार की पराजय इससे पहिले चुनाव में हो चुकी थी किन्तु अब की बार उसे और भी करारी शिकस्त मिली है। जातिवादी राजनीति को मतदाता ने निर्णायक झटका दिया है।

तमिलनाडु में काफी समय से एक विशेष परिवार का शासन था। यह दुख की बात है कि अधिकांश क्षेत्रीय दल पारिवारिक प्रा. लि. कम्पनियों में बदल गये हैं। विशेष बात यह है कि इन परिवारों के सदस्य

सत्ता का उपभोग करते करते न केवल सत्ता के मद में चूर हो जाते हैं अपितु भ्रष्टाचार में भी आकंठ डूब जाते हैं। तमिलनाडु में अहंकार पूर्ण आचरण की समस्त सीमाएँ टूट गई थीं। उन्हें स्वप्न में भी आशा नहीं थी कि भोली भाली दिखलाई देने वाली जनता उन्हें ऐसा सबक सिखाएगी। आशा है दूसरे क्षेत्रीय दल भी जनता के इस रुझान से सावधान हो जायेंगे।

पं. बंगाल में पिछले 35 वर्ष से साम्यवादी दलों के एक समूह का शासन था। कुछ अपवादों को छोड़कर शीर्ष पदों पर बैठे साम्यवादी नेता भ्रष्ट नहीं होते। किन्तु उनके शासन में पार्टी एवं सरकार का अन्तर समाप्त हो जाता है। वास्तव में निम्न श्रेणी के सरकारी पदों पर नियुक्ति उन्हीं लोगों को मिल पाती है जो पार्टी के सदस्य होते हैं। विकास के लिये दिया गया सारा धन इन्हीं लोगों के हाथों से गुजरता है। यह धन या तो पार्टी के हित में लगता है या पार्टी सदस्य उसे हजम कर जाते हैं। विश्व में जहां भी साम्यवादी दलों का शासन है वहां यही पद्धति अपनाई गई है। अपने बौद्धिक स्तर एवं उद्योगों के लिये प्रसिद्ध बंगाल जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में पिछड़ गया है। बंगाल के इस कुशासन का जुआ उतार फेंकने में जहां तृणभूण कांग्रेस एवं उसकी जुझारू नेता ममता बनर्जी का बहुत बड़ा हाथ है वहां इसका पूर्ण श्रेय बंगाल की जनता को जाता है जिसने साम्यवादियों के लोक लुभावने नारों के भ्रम जाल से निकल कर उस राज्य को विकास के पथ पर अग्रसर किया है।

(1)

अतः इन चुनावों ने देश को जातिवाद, वंशवाद एवं मृतप्रायः साम्यवाद से आजादी दिलाई है ऐसा कहना प्रति अनुचित नहीं होगी। यह आजादी कायम रहेगी ऐसी आशा हमें करनी चाहिये।

सी०एस०आर०—कारपोरेट सोशल रिस्पॉन्सिबिलिटी का विचार हमारे देश के लिये कुछ नया है। देश में करोड़पतियों एवं अरबपतियों की भी संख्या निरंतर बढ़ रही है किन्तु समाज के प्रति उत्तरदायित्वों को निभाने की गति अभी धीमी है। इस अंक में सी. एस.आर. के सम्पूर्ण विचार को तीन लेखों में समझाने का प्रयत्न किया गया है। आशा है पाठकगण इससे लाभान्वित होंगे।

भारत विकास परिषद् का कार्यक्षेत्र केवल कारपोरेट सैक्टर तक ही सीमित नहीं है। वह प्रबुद्ध एवं सम्पन्न मध्यमवर्ग में सक्रिय है जिनकी संख्या करोड़ों में है।

समाज सेवा में इन दोनों क्षेत्रों के योगदान की असीमित संभावनाएँ हैं इसमें कोई संदेह नहीं है।



Editor's Reflections

Success

To be clear about what success is must be the first step to achieving success. The most widely accepted definition of success may be the completion of anything intended or finishing what you planned to do. In other words achieving a goal is success. But the goal must be a worthy one. Some people succeed in becoming crime kingpins. Stalin succeeded in murdering millions of his own people. Hitler was successful in storming across Europe but butchered millions of jews. On the the other hand Jesus Christ, Martin luther King and Mahatma Gandhi succeeded is getting them selves killed for noble causes.

Some infamous, notorious and mad men were successful persons in their own eyes but in the eyes of the world they were nothing more than criminals unworthy of becoming members of human race.

So, our definition of success, achieving a goal, should be a qualified one. The Goal must be worthy and positive. It should be just, noble and moral. It should contribute something to others.

We should also understand that success is not a destination. Success is not an ultimate height. One success builds another. If you have achieved one goal there may be new goals to achieve.

Different types of efforts may be required to achieve different goals but there are some common requirements for achieving success in each one of them. They are :

- Action is the key to success and failure to act is the reason most people will never achieve the kind of success they dream about. You should plan your work and work your plan. Planning implies that first of all a goal or an objective should be fixed and then efforts should be made to achieve it in the stipulated time.

- Occasional failures or setbacks are certain to occur. But failures should not dismirich your enthusiasm or devotion. Rather the failures should become the stepping stones for eventual success.

- In case you fail to get the desired results, you must try to aseertain the cause. Instead of brooding over the failures, you should objectively analyse the reasons.

- Knowledge is power. You should always be ready to learn new things and should be receptive to new ideas and suggetions.

- If some one criticises your work habits or temperament, donot feel disturbed. Constructive critcism will give you a direction where you can improve yourself.

(2)

- Negative outlook in life and fear of failure are the arch enemies of success. If you are always obessed with worry and anxiety, you are distancing yourself from success.

- Success is the child of drudgery and perseverance. There is no shortcut to perfection and only pratice will make your perfect. If you want to become a writer start today and go on writing. You will be a successful writer one day.

- Laziness is the biggest obstacle in the path of success. Einstein said that genius is one percent inspiration and ninety nine percent perspiration. Genuine success and sustained labour are inseparable companions.

- Time management is another fector which leads to success. You should allocate your time to major activities in such a manner that important work gets more time than the lesss important activities.

Always remember no matter who you are or whatever your age may be, if you want to achieve permanent success, the motivation that will drive you toward that goal must come from within. No outside force can make you successful and happy at the same time.

Holy Wisdom

rRoKku

एष सर्वेषु भूतेषु, गूढोऽऽत्मा न प्रकाशते। दृश्यते तु अग्रया
बुद्ध्या, सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः॥ कठोपनिषद् 1/3/12.

यह आत्मा सब प्राणियों के भीतर है किन्तु प्रत्यक्ष नहीं है। जो सूक्ष्मदर्शी
हैं, उन्हीं को हृदय गुफा में छिपी आत्मा का सूक्ष्म बुद्धि से दर्शन होता है।

यच्छेद् वाक् मानसी प्राज्ञः, तद् यच्छेत् ज्ञाने आत्मनि। ज्ञानम्
आत्मनि महति नियच्छेत्, तद् यच्छेत् शान्ते आत्मनि॥ कठोपनिषद्
१/३/१३.

आत्मा के दर्शन की इच्छा वाला बुद्धिमान् (नेत्र आदि इन्द्रियों के
सहित) वाणी को मन में लीन करे और फिर महत्त्व को शांत आत्मा में लीन
करे।

उत्तिष्ठत जाग्रत, प्राप्य वरान् निबोधन। क्षुरस्य धारा निशिता
दुरत्यया, दुर्ग पथः तत् कवयो वदन्ति॥ कठोपनिषद् १/३/१४.

उठो, जागो (विषयों के चिन्तन का परित्याग करो) और अपने से श्रेष्ठों
(गुरुजनों) से मिलकर समझो (आत्मा के स्वरूप को ठीक-ठीक जानो)।
कवियों (बुद्धिमानों) का कहना है कि यह मार्ग (आत्मज्ञान का मार्ग) छुरे
की धारा की तरह तीक्ष्ण एवं दुस्तर है।



Four things support the world; the learning of the wise,
the justice of the great, the prayers of the good, and the valour
of the brave.

-Prophet Muhammad



To be without some of the things you want is an indis-
pensable part of happiness.

-Bertrand Russell

भारत विकास परिषद् के स्थापना दिवस के अवसर पर सेवा की संस्कृति

– सुरेन्द्र कुमार वधवा
राष्ट्रीय महामन्त्री-भा.वि.प.

ज्ञानप्रभा के इस अंक में कारपोरेट सोशल रिस्पॉन्सिबिलिटी अर्थात् बड़े
औद्योगिक घरानों के सामाजिक उत्तरदायित्वों पर विशेष सामग्री दी गई है। इस शब्द
का जन्म पश्चिम में हुआ एवं पश्चिम में ही विशेष रूप से अमेरिका में यह विचार
अत्यंत तीव्र गति से फैल रहा है। वहां के पचास से अधिक अरब पतियों ने अपनी
50% से भी अधिक सम्पत्ति सामाजिक कार्यों के लिये दान में देने की घोषणा की
है। भारत में भी इस आन्दोलन ने दस्तक दी है एवं कई औद्योगिक घरानों ने विशाल
धन राशियाँ समाज हित के लिये प्रदान करने की घोषणा की है।

(3)

भारत के लिये यह विचार नितांत नवीन नहीं है। अपने समय के कुबेर भामाशाह
ने अपना सर्वस्व देश के लिये अर्पित कर दिया था। बड़े व्यापारी एवं धनी जन
साधारण के लिये अनेक अस्पतालों, धर्मशालाओं, विद्यालयों इत्यादि का निर्माण कराया
करते थे ऐसा उल्लेख हमारे प्राचीन इतिहास में अनेक स्थानों पर मिलता है।

किन्तु आधुनिक भारत के संदर्भ में इस विचार का एक पहलु और भी है। भारत
में एक सम्पन्न मध्य वर्ग आजादी के पहले से मौजूद था किन्तु इसका आकार छोटा
था। नई उदारवादी अर्थव्यवस्था के फलस्वरूप इस सम्पन्न वर्ग की संख्या में तेजी
से बढ़ोतरी हुई है। इसकी संख्या का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि वर्ष
2010-2011 में 17 लाख कारों, 80 लाख रेफ्रिजरेटरों तथा एक करोड़ मोबिल फोन
की बिक्री हुई है। यदि इस विशाल सम्पन्न उच्च मध्यम वर्ग की मनोवृत्ति में परिवर्तन
करके इसे संगठित करते हुए सेवा की ओर उन्मुख कर दिया जाये तो देश की दशा
बदली जा सकती है।

कोई अच्छी कृति जब बहुसंख्य जनो में फैल जाता है तो वह संस्कृति कहलाने
लगती है। भारत विकास परिषद् प्रबुद्ध एक समृद्ध वर्ग की मनोवृत्ति में परिवर्तन लाकर
उसे सेवा की ओर उन्मुख करने के कार्य में लगा हुआ है। इस वर्ग की संगठित शक्ति
अनेक औद्योगिक घरानों से भी अधिक है। आवश्यकता इस बात की इस काम में तेजी
लाई जाये ताकि दान एवं सेवा की यह संस्कृति जन जन में व्याप्त हो सके। हमारा
मिशन सेवा की इस संस्कृति का विस्तार करना है। □

कारपोरेट सोशल रिस्पॉन्सिबिलिटी

(Corporate Social Responsibility)

उद्योगपतियों को भामाशाह बनाने की कवायद।

– सुरेश चन्द्र

कुछ समय पूर्व एक समाचार बहुत प्रमुखता से मीडिया में प्रसारित हुआ एवं वह था कि विप्रो के चेयरमैन अजीम प्रेम जी ने लगभग नौ हजार करोड़ रुपये की राशि से एक चैरिटेबल फाउण्डेशन बनाई है जो ग्रामीण क्षेत्रों में आरंभिक शिक्षा के ढाँचे को सुदृढ़ करने का काम करेगी। इस राशि से एक विश्वविद्यालय की स्थापना की जाएगी जहाँ की शिक्षा पद्धति विद्यार्थियों में रिसर्च के प्रति रूचि जाग्रत करेगी। इस विश्वविद्यालय का काम केवल डिग्रियाँ बाटना नहीं होगा अपितु यह एक नई दिशा में काम करेगी।

अमेरिका के वारेन बफेट एवं बिल गेट्स संसार के सर्वाधिक धनी व्यक्ति हैं। उनकी सम्पत्ति करोड़ों डालर की नहीं अपितु अरबों डालर की है। बफेट ने अपनी 99% सम्पत्ति दान में देने की घोषणा की है। बिल गेट्स ने 30 अरब डालर जन सेवा के लिये समर्पित करने का निश्चय किया है। केवल यही नहीं इन दोनों ने एक मुहिम चलाई है जिसके अन्तर्गत अमेरिका के धनी लोगों से अपील की गई है कि वे अपनी 50% सम्पत्ति जनहित के लिये दान कर दें। इस अपील के फलस्वरूप पचास से भी अधिक अरबपति अमेरिकियों ने अपनी 50% से अधिक सम्पत्ति दान में देने की घोषणा की है।

भारत में यह पम्परा काफी समय पूर्व से किन्तु छोटे पैमाने पर मौजूद है। बिडला परिवार अपनी दानशीलता के लिये प्रसिद्ध है। उन्होंने अनेक हास्पिटल, धर्मशालाएं, मंदिरों आदि का निर्माण कराया है। टाटा ने जमशेदपुर या टाटानगर नाम के उस नगर, जहाँ टाटा स्टील स्थित है, में अपने कारखाने के समस्त कर्मचारियों के लिये स्वास्थ्य एवं शिक्षा की व्यवस्था की है। जमशेदपुर की सड़कें एवं सफाई समस्त भारत के नगरों के लिये एक मॉडल प्रस्तुत करते हैं। एच.सी.एल. के चेयरमैन शिव नाडर ने अपनी सम्पत्ति का 10% जनहित के कार्यों में लगाने की घोषणा की है। वे अगले पांच वर्षों में शिक्षा के क्षेत्र में रु. 4000 करोड़ खर्च करेंगे जिससे एक विश्वविद्यालय तथा अनेक आवासीय स्कूल खोले जायेंगे। दानवीरों की इस सूची में एन.आर. नारायण मूर्ति,

बाइकोन की मालिक किरन मजूमदार शा, नन्दन नलिकेनी की पत्नी रोहिणी नीलकेनी तथा भारती के चेयरमैन सुनील मित्तल के नाम भी जोड़े जा सकते हैं।

उद्योगपतियों की इन जनहितकारी एवं परोपकारी गतिविधियों को पाश्चात्य विद्वानों ने एक विशिष्ट नाम दिया है Coporate Social Responsibility (CSR)। इन शब्दों का अर्थ केवल इन धनी व्यक्तियों द्वारा दिये गये धन के दान तक सीमित नहीं है अपितु CSR की कल्पना अत्यंत विस्तृत है। इस विचार की आधारशिला है— People, Plant and Profit. (जन समुदाय, धरती तथा लाभ)। जहाँ जन समुदाय का अर्थ मानव रूपी पूंजी से है। किसी उद्योग के लिये इसका अर्थ है कि बाल श्रम का उपयोग एवं शोषण नहीं किया जायेगा, श्रमिकों का उचित वेतन मिलेगा, काम के घंटे बहुत लंबे नहीं होंगे एवं अन्य किसी प्रकार से श्रमिकों का शोषण नहीं होगा। धरती (Plant) का अर्थ प्राकृतिक सम्पदा से है। CSR को मानने वाली कम्पनी विषैली वस्तुओं का उत्पादन नहीं करेगी एवं ऐसा कोई कार्य नहीं करेगी जिससे पर्यावरण दूषित हो। लाभ (Profit) अर्जन प्रत्येक उद्योग का मूल उद्देश्य है किन्तु यह लाभ अनुचित एवं अनैतिक तरीके अपनाकर नहीं कमाया जायेगा।

(4)

CSR के विचार का जन्म सन् 1950 में अमेरिका में हुआ था एवं 1960 से 1978 तक उद्योग जगत में इस पर चर्चा होने लगी थी। उस समय अमेरिका के सामने बेरोजगारी, गरीबी, नस्लवाद, प्रदूषण इत्यादि अनेक समस्याएं थीं एवं यह महसूस किया जाने लगा था कि व्यापार एवं उद्योग को केवल लाभ अर्जित करने में ही नहीं लगा रहना चाहिए अपितु इन समस्याओं के हल करने में भी सहायक होना चाहिए। 1980 से 2000 के बीच बड़े औद्योगिक घराने यह स्वीकार करने लगे कि उनके भी कुछ सामाजिक उत्तरदायित्व हैं एवं उनका उद्देश्य केवल अधिकतम लाभ कमाना नहीं है। यह भी महसूस किया जाने लगा कि कम्पनियां यदि जीवित रहना चाहती हैं, यदि वे बाजार में अग्रणी रहना चाहती हैं एवं यदि वे अपने बिक्री एवं परिसम्पत्तियों में निरन्तर वृद्धि की इच्छुक हैं तो उन्हें अपने मुनाफे का कुछ अंश मालिकों एवं शेयर होल्डरों के अतिरिक्त अन्य लोगों में भी बांटना होगा।

CSR को अनेक प्रकार से परिभाषित किया गया है। यूरोपियन यूनियन के अनुसार, “यह एक ऐसा विचार है जिसके अनुसार एक व्यापार को अपने आर्थिक विकास में अंशदान देने के साथ-साथ श्रमिकों एवं उनके परिवारों के जीवन स्तर में सुधार तथा स्थाई रूप से निवास कर रहे लोगों एवं समस्त समाज के हितों के प्रति प्रतिबद्ध होना चाहिए।” एक अन्य परिभाषा के अनुसार सी.एस.आर. का अर्थ किसी भी उद्यम के लिये अपने हितों तथा लाभ के अतिरिक्त समाज के हितों को भी सुरक्षित रखने से है। यह भी कहा जाता है कि सी.एस.आर. का अर्थ अपनी इच्छा से ऐसे निर्णय

लेना है जिनसे पर्यावरण की रक्षा हो सके तथा स्थाई विकास का मार्ग प्रशस्त हो सके। एक इस्लामिक विद्वान का यह भी कथन है कि गैर कानूनी एवं अनैतिक चीजों जैसे बाल श्रम, श्रमिकों को पूरा वेतन न देना, प्रतिबन्धित वस्तुओं का व्यापार इत्यादि से लाभ न कमाना भी सी.एस.आर. में शामिल है। कनाडा की एक स्वयं सेवी संस्था का मत है कि सी.एस.आर. किसी कम्पनी प्रबन्धन द्वारा अपनाए गये उन तरीकों को कहते हैं जिनसे उस कम्पनी के कार्यकलापों के हानिकारक प्रभाव कम हो जाते हैं एवं लाभदायक प्रभाव बढ़ जाते हैं।

उद्योगों के सामाजिक उत्तरदायित्वों के इतिहास पर दृष्टिपात करें तो हम पायेंगे कि सन् 1990 तक इस वाक्य का अर्थ जनहित संबंधी कार्यों एवं धन दान से लिया जाता था। व्यापारिक घराने समय-समय पर या वार्षिक रूप से कुछ निश्चित राशि दान देते थे या सार्वजनिक हित के कार्यों में लगाते थे। किन्तु अब यह अपनी इच्छा से किया जाने वाला दान नहीं अपितु एक आवश्यक सामाजिक उत्तरदायित्व बन गया है। अनेक संस्थाओं में इसके लिए पृथक विभाग बनाया गया है एवं योजनाबद्ध ढंग से अनेक कार्यक्रमों का कार्यान्वयन किया जाता है। यही नहीं इन प्रयासों का समय-समय पर मूल्यांकन भी किया जाता है।

उपरोक्त परिभाषाओं एवं विवरण से उद्योगों के सामाजिक उत्तरदायित्व का जो चित्र उभरता है उसमें हम निम्न बिन्दुओं को सम्मिलित कर सकते हैं-

- मानवाधिकारों के अन्तर्राष्ट्रीय कानून के अनुसार उद्योगों में किसी भी प्रकार के भेदभाव की मनाही है। इसका अर्थ है कि धर्म, राष्ट्रीयता, नस्ल, शारीरिक अपंगता या लिंग के आधार पर कोई भी भेदभाव नहीं किया जा सकेगा। समान कार्य के लिए समान वेतन देना होगा। दास प्रथा एवं बालश्रम भी पूर्णतः प्रतिबन्धित रहेंगे। किसी को दिये गये ऋण के बदले उससे जबरदस्ती काम नहीं कराया जायेगा।
- सी.एस.आर. के अन्तर्गत उद्योग निरंतर विकास (Sustainable Development) की प्रणाली पर कार्य करेंगे। इस शब्द का अर्थ है कि वर्तमान की आवश्यकताओं को इस प्रकार पूर्ण किया जाये कि भावी पीढ़ियों की अपनी आवश्यकताएँ पूर्ण करने की क्षमता बनी रहे। यह विकास इस प्रकार होता है कि उसमें आर्थिक विकास, सामाजिक विकास तथा पर्यावरण की रक्षा भी शामिल रहती है। इस प्रकार के विकास का स्पष्ट अर्थ है कि प्राकृतिक स्रोतों, वन सम्पदा, जल एवं वायु का इस प्रकार प्रयोग किया जाये कि इन पर निर्भर रहने वाले मनुष्यों एवं यहां तक की पशु-पक्षियों के लिये भी ये इस्तेमाल योग्य बने रहें एवं उन्हें पुनर्वास की समस्या न हो।

(5)

- सामाजिक उत्तरदायित्व के सिद्धान्त को मानने वाली कुछ भारतीय फर्मों के कार्यकलापों का अध्ययन किया गया एवं उनकी निम्न विशेषताएँ पाई गईं-
 - (अ) उनके द्वारा उत्पादित वस्तुओं की गुणवत्ता अत्यन्त उच्चकोटि की थी एवं समाज के लिये उपयोगी थी। जनता में भी उनकी छवि अत्यन्त उज्ज्वल थी।
 - (ब) प्रत्येक स्तर पर निर्णय लेते समय श्रमिकों एवं कर्मचारियों की भागीदारी सुनिश्चित की गई।
 - (स) कम्पनी द्वारा अर्जित लाभ का कुछ भाग कर्मचारियों में विभिन्न रूपों में बांटा गया।
 - (ड) जरूरतमन्द लोगों एवं निर्धनों की सहायता हेतु आयोजित कार्यक्रमों में भरसक सहायता एवं दान दिया गया।
 - (इ) स्थानीय विद्यालयों के निर्धन छात्रों को पुस्तकें, स्कूल की वर्दी, छात्रवृत्तियाँ इत्यादि प्रदान की गई।
 - (फ) स्वास्थ्य के क्षेत्र में स्वास्थ्य जांच शिविर, मोतियाबिन्द ऑपरेशन शिविर, निःशुल्क दवाईयाँ एवं ग्रामीण क्षेत्रों में डाक्टरों का समय-समय पर प्रबन्ध कराया गया।
- इस सामाजिक उत्तरदायित्व के सिद्धान्त का एक पहलु नैतिक भी है। कम्पनी के प्रबन्धन को इसे एक नैतिक उत्तरदायित्व समझना चाहिए। उन्हें देश के कानूनों का पालन करना चाहिये। प्रबन्धकों का यह प्रयत्न होना चाहिये कि कम्पनी के कर्मचारियों, शेयर होल्डरों, ग्राहकों एवं स्वयं प्रबन्धन के मध्य सौहार्द-पूर्ण संबंध विकसित हों तथा महत्वपूर्ण निर्णय लेने में सभी की भागीदारी हो।

सरकार एवं सी.एस.आर. :-

अभी कुछ समय पूर्व तत्कालीन कारपोरेट मामलों के मंत्री सलमान खुर्शीद ने एक प्रेस कांफ्रेंस में घोषित किया था कि केन्द्रीय सरकार ऐसा कानून बनाने पर विचार कर रही है जिसके अनुसार कम्पनियों को अपने लाभ का 2% अपनी सामाजिक जिम्मेदारियों पर खर्च करना होगा। जब उनसे पूछा गया कि क्या कम्पनियों के लिये ऐसा करना अनिवार्य होगा एवं ऐसा न करने पर उन्हें क्या दण्ड दिया जायेगा तो मंत्री जी कुछ स्पष्ट नहीं कर सके। उनके कथन से ऐसा लगा कि इस नियम को पालन करने वालों को कुछ प्रोत्साहन दिये जायेंगे एवं न करने वालों को वे सुविधाएँ नहीं मिलेगी।

कारपोरेट सेक्टर में ऐसी आम राय है कि सी.एस.आर. को स्वैच्छिक ही रहना चाहिए एवं कानून बना देने से इस का वास्तविक उद्देश्य समाप्त हो जायेगा। किन्तु फिर

भी अनेक देशों में सी.एस.आर. के कुछ प्रावधानों को कानूनी रूप दिया गया है। इन कानूनों के उल्लंघन करने वाली कम्पनियों पर अर्थ दण्ड आरोपित किया जाता है। इन कानूनों की मानीटरिंग के लिए सरकारी एजेन्सियां बनाई गई हैं। अमेरिका में पर्यावरण के नियमों, श्रमिक कानूनों, खाद्य पदार्थों तथा दवाओं में अपमिश्रण के नियमों आदि के उल्लंघन पर नियंत्रण रखने के अलग-अलग एजेन्सियां हैं जिन्हें जांच करने एवं अर्थ दण्ड लगाने का अधिकार है।

सी.एस.आर. का पालन करने वाली कम्पनियों को अधिकांशतः टैक्स छूट के रूप में प्रोत्साहन दिया जाता है। अमेरिका तथा अन्य कुछ पाश्चात्य देशों में इस संबंध में अनेक कानून बनाये गये हैं। किन्तु भारत में इस दिशा में अभी शुरुआत हो रही है। आशा है कि यहां भी दण्ड एवं प्रोत्साहन दोनों का मिला जुला रूप सी.एस.आर. को आगे बढ़ायेगा।

सी.एस.आर. का विरोध :-

सी.एस.आर. के सिद्धान्त को प्रारम्भ हुए यद्यपि 50 वर्ष से भी अधिक चुके हैं किन्तु व्यापार एवं उद्योग का एक बड़ा वर्ग अभी भी अपनी पुरानी मानसिकता में ही जी रहा है। इस वर्ग का मानना है कि व्यापार एक आर्थिक गतिविधि है एवं इसका एक मात्र उद्देश्य अधिकतम लाभ अर्जित करना है। व्यापारियों एवं उद्योगपतियों को पूरा ध्यान अपने कारोबार ठीक प्रकार से चलाने में लगाना चाहिए न कि सामाजिक पचड़ों में पड़ कर अपनी शक्ति का अपव्यय करना चाहिए। इस वर्ग की एक मात्र जिम्मेदारी अच्छी क्वालिटी का माल कम से कम दाम में ग्राहक तक पहुंचाना है। उनका यह भी कथन है कि सामाजिक उत्तरदायित्व का निर्वहन करने में जो धन व्यय होगा अनन्तोगत्वा उसका बोझ ग्राहकों को ही उठाना पड़ेगा क्योंकि उनके द्वारा उत्पादित माल की कीमत बढ़ जायेगी या वे इस घाटे को अपने श्रमिक एवं कर्मचारियों को दिये जाने वाले वेतन एवं सुविधाओं में कटौती करके पूरा करेंगे। अतः सामाजिक उत्तरदायित्व वहन करना सरकार एवं स्वयंसेवी संस्थाओं का काम है उनका नहीं।

किन्तु अब उद्यमी वर्ग की ओर से ही 'मुनाफा एवं सिर्फ मुनाफा' सिद्धान्त का विरोध होने लगा है। इस वर्ग का कथन है कि सी.एस.आर. पर खर्च किया गया धन प्रारम्भ में कुछ बोझ लगता है किन्तु भविष्य में इससे लाभ मिलता है। ग्राहकों में ऐसे उद्यमियों की छवि निखरती है एवं उनका उत्पाद विश्वसनीय बन जाता है। यदि कोई कारखाना माल उत्पादन के फलस्वरूप विषैली गैस या कैमिकल का उत्पादन करता है तो उसके उचित निराकरण का उपाय उसे ही करना चाहिए अन्यथा सरकार को इस संबंध में कानून बनाने पड़ते हैं एवं उद्योग पर अर्थ दण्ड लगता है। प्रायः ही उद्योग की सफलता कई लोगों पर निर्भर करती है। CSR वाले उद्योगों को उच्च गुणवत्ता

वाला कच्चा माल उचित मूल्य पर समय से सप्लाई होता है। श्रमिक मेहनत से काम करते हैं एवं ग्राहक इस माल को खरीदते हैं। अतः इन सबके हितों की देखभाल उद्यमियों का नैतिक कर्तव्य है।

भारत में सी.एस.आर. :- भारत में सी.एस.आर. की कल्पना कोई नवीन विचार नहीं है। राजस्थान के प्रसिद्ध व्यापारी भामाशाह का त्याग आज भी इतिहास के पृष्ठों पर स्वर्णिम अक्षरों में लिखा हुआ है जिन्होंने अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिये अपनी जीवन भर की कमाई दान कर दी थी। प्राचीन समय से ही वहां व्यापारी वर्ग जन सामान्य के लिये कुएं, बावड़ी, प्याऊ, मंदिर, धर्मशालाएं, अस्पताल, विद्यालय इत्यादि का निर्माण कराया करते थे। अनेक प्रकार के व्यापारों में लाभ का एक अंश निकालकर धर्मादे के नाम से अलग रख दिया जाता था एवं उसे जन सेवा के कार्यों में खर्च किया जाता था।

(6)

इसमें कोई संदेह नहीं कि वर्तमान समय में इस दानवृत्ति ने सी.एस.आर. के नाम से एक नया रूप धारण किया है। इसका विस्तार हुआ है एवं स्वैच्छिक दान से आगे बढ़कर यह एक अनिवार्य सामाजिक उत्तरदायित्व बनता जा रहा है। इस दिशा में कुछ कारपोरेट हाउस अग्रगणी हैं एवं समस्त उद्योग जगत के लिये मॉडल बन गये हैं। इनमें सबसे पहला नाम टाटा का ही आता है जिनका जिक्र इस लेख के आरम्भ में आ चुका है। टाटा सोशल डेवलपमेंट सोसायटी 1979 में स्थापित हुई थी एवं इसने भारत की प्रथम सुनियोजित उद्योग नगरी बसाई थी जिसे जमदेशपुर के नाम से जाना जाता है। इस सोसायटी ने शिक्षा, खेल, चिकित्सा इत्यादि के क्षेत्रों में अत्यंत उत्कृष्ट कोटि का कार्य किया है। इस क्षेत्र में दूसरा बड़ा नाम ए.वी.बिड़ला ग्रुप का है जो पिछले पचास वर्षों से ग्रामीण क्षेत्रों में युवकों को रोजगार परक प्रशिक्षण इत्यादि का काम कर रहे हैं। सरकारी क्षेत्र की कम्पनियां जैसे ओ.एन.जी.सी., एन.टी.पी.सी., कोल इन्डिया, सेल इत्यादि भी अपने मुनाफे का 5% तक सामाजिक कार्यों पर खर्च करती हैं।

वर्तमान जीवन की यह विडम्बना है कि हम जीवन को समग्र रूप में न जीकर टुकड़ों जी रहे हैं। जीवन में नैतिकता एवं आध्यात्मिकता अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं एवं वास्तव में हमारी प्रत्येक गतिविधि इन्हीं से संचालित होनी चाहिए। किन्तु वर्तमान में हम व्यापार, व्यवसाय एवं उद्योग को केवल धन कमाने का साधन मान बैठे हैं एवं नैतिकता को तिलांजली दे दी है। सी.एस.आर. वास्तव में उन्हीं नैतिक मूल्यों की ओर लौटने का प्रयास है। यदि उद्योग जगत अपने सामाजिक उत्तरदायित्वों का उचित प्रकार निर्वहन करेगा तो मानवाधिकार हनन, प्रदूषण, प्राकृतिक सम्पदा का अनुचित दोहन जैसी समस्याएं स्वयं ही हल हो जायेंगी।



Corporate Social Responsibility

- O. P. Saxena

Welfare of society is the prime concern of every government. The Directive Principles of State Policy provide that the state should strive to promote the welfare of the people and to secure a just social order. Though the state is the single largest institution saddled with the responsibility of adopting and executing measures aimed at protecting and promoting the welfare of the society yet it cannot be achieved without the active cooperation of other organisations. Most of these organisations are philanthropic and charitable organizations discharging social responsibility.

Social responsibility can be explained as the obligation of the decision makers to take action which protects and improve the welfare of society as a whole alongwith their own interests. Corporate Social responsibility (CSR) has become the buzzword these days in the corporate community all over the world. CSR is fundamentally a philosophy or vision about the relationship of business and society. The philosophy is basically to give back to the society what the business has taken from it, in the course of its quest for creation of wealth.

The concept of CSR originated in the 1950 U.S.A. and came into prominence in public debate during the 1960 and 1970. U.S.A. had lots of pressing social problems like poverty, unemployment, pollution etc. CSR became a matter of utmost importance for diverse groups demanding change in the business. During 1980 and 2000 corporates generally recognized a responsibility to the society.

The concept of corporate social responsibility in India is not new and can be traced to ancient times albeit informally. Kautilya of Maurya Period preached and promoted ethical principles while doing business. Indian philosophy is rich with preachings which call for helping the poor and under privileged. The religious discourse

preaches donation from one own's earnings to the needy. Muslims call it Zakaat, Hindus call it Dharmada while sikhs name it Dashant.

In the preindependence era, the businesses which pioneered industrialization along with fighting for independence also followed the aforesaid concept by setting up charitable foundations, educational and health care institutions and trusts for community development. Till the 1990 corporate social responsibility was understood purely in terms of charity. Welfare programme or institutions were introduced not as a duty or responsibility but as a form of charity that was supposed to indicate the virtues of the company or organization. Business never kept stakeholders in mind while planning for such institutions, thereby reducing the efficacy and efficiency of corporate social responsibility in their lives. However, over the last few years the concept of CSR has been changing. Corporate Social responsibility is slowly moving away from charity and starting to build partnership. Earlier profit motive was the dominant consideration. Business flouted fair play and social norms. Lockout, discriminatory pricing, tax evasion etc. were more common. Social responsibility of business has been an evolving subject matter. Corporate Social Responsibility is no longer mere philanthropy or charity but a hard reality to be put into practice to invest and add value to business.

(7)

A corporate is a structure established to allow different parties to contribute capital, expertise and labor for the maximum benefit of all of them. The U.S. based Business for Social Responsibility (BSR) regards corporate social responsibility as business decision making linked to ethical values, compliance with legal requirements and respect for people, communities and the environment. The basic requirement of CSR warrants that it must add value to the society not only for the present but for future as well. It should be committed to transparency and accountability, adopt practices that are based on ethical values and respect for employees, communities and environment designed to deliver sustainable value to society at large as well as to shareholders. Corporate Social Responsibility offers many benefits both internally and externally to the companies. Researches have that corporate practicing CSR have got benefits

like improved financial performance, reduced operating costs, enhanced brand image and reputation and increased productivity.

An especially important element of social responsibility is the relationship between business and government. The government attempts to shape social responsibility practices through both direct and indirect channels. The government most often directly influences organizations through regulation or the enactment of laws and rules that they are required to follow. For example environment protection agency handles environmental issues, food and drink controlling authority focuses on consumer related concerns. Department of labour helps protect employees. The government also indirectly influences the social responsibility of business through tax incentives.

Corporate social responsibility has motivated many industrialists and business houses to establish foundations aimed at providing funds for education, health care and empowerment of poorest section of society. Software zar Azim PrANJI and telecom tycoon Sunil Mittal have pledged millions of dollars for setting up charitable foundations. Pirojsha Godrej Foundation is engaged in philanthropic activities aimed at education, health care and environment. Tata group, Birlas, Shiv Nadar, Vidya Shah are amongst a members of Billionaire club who have integrated social vision into their business vision. Indian-American Silicon vally venture capitalist Vinod Khosla and his wife Neeru are among the latest billionaires to have pledged half of their vast fortune to charity either during life time or after death. Add to the list of philanthropist is GMR, group Chairman G. Mallikarjuna Rao, a first generation entrepreneur of Andhra Pradesh, has pledged Rs. 1540 crore to improve education among the underprivileged section of society.

Indian billionaires have ramped up their philanthropic activity in recent past but still lag behind their western Counterparts. A2010 Bain & Co. report said that India's contribution to charity is just 0.6% of its GDP, while it was 2.2% in the U.S. and 1.3% in the U.K. For American billionaires Bill Gates, Melinda Gates and Warren Buffett, philanthropy is their way of giving back to society what they took from it. Forty American billionaires are reported to have pledged to donate at least half of their wealth to public cause. Buffet

has pledged 99% of his wealth to charity while Gates have committed \$ 30 billion. Buffet and Gates visited India recently and explored the possibility of investing in projects which may provide social service to the needy.

Ethics is important not only in business but in all aspects of life because it is the vital part and the foundation on which society is built. Ethics is related to all disciplines of management like accounting, information, production, intellectual property, knowledge and skill, human resource management, sale, marketing, international business and economic system. In the same way philanthropy functions best in places where public servants are trusted and credibility of the management system is unquestionable. Sadly, in our country for most of us, it works the other way around. Our lack of trust in public institutions works at a number of levels. First, and most obviously, it inhibits public charity for no body wants his money misspent and pocketed. What matters most is the confidence that money given would be honestly used in a transparent manner. Sadly, in India, corruption seems to have become our national character. Vinod Rai, Comptroller and Auditor General of India recently remarked that business practices of some corporate houses have become the subject of increasing public criticism for their ethical deficit. Corporate India needs to go through a phase of reflection and soul reaching. The Satyam Saga caused enormous damage to the India Shinning. In recent times corporate scandles in sectors like telecom and mining have caused widespread dismay at the current state of governance. 2G spectrum and CWG scandals have adversely impacted the image of India. It is no surprise that the Home Minister of India admitted that there was a governance and ethical deficit in governance that needed to be taken note of. Let us hope that in times to come there shall be better governance and more corporates will join the cause of reaching out to the underprivileged and provide healing touch.

(8)

The heights of greatmen reached and kept, were not attained by sudden flight. But they, while their companions slept, were toiling upward in the night.

—H.W. Longfellow

Corporate Social Responsibility

- A Wide Concept

- Dr. K. K. Wadhwa

S.M. Bajaj

Corporate Social Responsibility (CSR) means giving back certain portion of one's income to the society and investing in and improving the society's environment in a single or multiple ways. There can be nothing mandatory about this but since the corporate houses have been able to earn a lot of money out of the economic ventures undertaken by them, they should discharge certain moral obligations towards improvement of the society which helped them to grow. The help can be extended to the sections of the society with which they might have no concern but otherwise that particular section of the society needs some help in the form of money, manpower or any other kind of action.

There are certain examples of Big Corporate Houses like the Microsoft Corporation, Wipro, Tatas, Godrej, etc. discharging this unwritten obligation towards the society.

Bill Gates, an American business magnate, and chairman of Microsoft, was consistently ranked among the world's wealthiest people. In the later stage of his career, Gates has pursued a number of philanthropic endeavors, donating 'large' amounts of money to various charitable organizations and scientific research programs through the Bill & Melinda Gates Foundation which is the largest charitable foundation in the world. Its philanthropic focus is on those global problems that are ignored by governments and other organizations.

Indian industrialists and corporate houses have their own home-grown, successful and time-tested models of both philanthropy and CSR.

The Electricity Corporations such as NDPL can with a view to reducing the carbon foot print, supply CFL light bulbs at wholesale or even subsidized prices to their consumers.

Azim Premji, Chairman of Wipro Limited, according to Forbes, is currently the third wealthiest Indian as well as the richest Indian Muslim. Premji is known for his modesty and frugality in spite of his wealth. He drives a Toyota Corolla and flies economy class, prefers to stay in company guest houses rather than in luxury hotels and even served food on paper plates at a lunch celebrating his son's wedding.

He is also a philanthropist and has established the Wipro Equity Reward Trust to allow employees to acquire stake in Wipro's success and growth. Besides the producing educational CDs, his Trust has also established Azim Premji University to award degrees in teachers training.

(9) In December 2010, he pledged to donate \$2 billion for improving school education in India. This would be done by transferring 213 million equity shares of Wipro Ltd., held by a few entities controlled by him, to the Azim Premji Trust. This donation is the first of its kind by any Indian billionaire.

Similarly the Birlas, to supplement the Governmental efforts, have established Science and Technology Institutes at Pilani, Goa, Ranchi and Bhimtal.

Harsh Goenka, chairman of RPG Enterprises elaborates "Philanthropy, at one level, is a personal thing. Businessmen and CEOs often promote causes that are close to their heart, and many have become closely identified with those causes and are doing very good work."

Shailendra Singh, Joint Managing Director of Percept Limited, says that the definition of wealth has to extend beyond money. "We need to bring into its ambit knowledge and experience too. We've all benefitted from the wealth of experiences that has been passed down to us through generations. That's the legacy we need to create and share".

Anu Aga, Director of Thermax Limited does not think 'she has the right to use wealth only for the personal enjoyment. She is a

trustee of that wealth and a part of it has to be shared with the community from which she has derived it'.

There are certain industries including pharmaceuticals that pollute heavily and there are others that do not sell their produce into the developing world. Their action can be termed as anti-social. A corporate has not only economic and legal obligations, but also certain responsibilities to society that extend beyond these obligations.

A corporate can insulate the society from the negative impacts of its operations, products and services. An example can be given of those producing tobacco products including high-value cigarettes. Their social responsibility includes protection of environment from immediate pollution in the form of vapours released in the atmosphere. They use high rise chimneys to release such vapours. Similarly, the liquid waste and garbage is pre-processed so that its release doesn't pollute the surrounding environment. This step of preventing the environment from pollution is another form of social responsibility.

Everybody now knows that the consumption of tobacco products is injurious to health and one of the major causes of cancer. Owing to economic considerations, governments also don't ban all these products knowing fully well of the risk the society is put to. As a social responsibility, a tobacco producing corporation, should at least, establish free Cancer Detection Centers and maintain hospitals for cancer treatment.

Possible adverse affects in certain cases : For example, in case a company is investing its resources to alleviate the suffering of a 'beggar class' and provides food and shelter for them. It might in fact, can be charged with helping increase in their number as they would no longer want to work but resort to begging even more. That's why the local Governments have to resort to removal of beggars from religious and tourist places. There are certain other charity organisations that take care of the poor and disease stricken population and admit them in sanatoria. But when certain patients among them become healthy, they are not allowed to be relieved from that hospital because of the apprehension that the strength of the sanatorium will decrease.

□

स्वतंत्रता का वह स्वर्ग

– न्यायमूर्ति बी.एन. श्रीकृष्ण

(10)

धर्म-निरपेक्षता भारतीय संविधान का ही नहीं, भारतीय सोच का भी एक महत्वपूर्ण अंग है, भले ही इसका वर्तमान स्वरूप पाश्चात्य अवधारणा पर आधारित हो, लेकिन हमारे शास्त्रों में इसे कहीं व्यापक अर्थों और संदर्भों में समझाया गया है। आज जब सभ्यताओं के संघर्ष की बात हो रही है, धर्म के नाम पर मनुष्यों के बीच दीवारें खड़ी की जा रही हैं, धर्मनिरपेक्षता को समझना और उसका पालन करना मनुष्यता की रक्षा के लिए एक जरूरत बन चुकी है, न्यायमूर्ति बी.एन. श्रीकृष्ण ने 'जस्टिस तारकुण्डे स्मृति व्याख्यान' में इस विषय पर विस्तृत विवेचन प्रस्तुत किया था। प्रस्तुत हैं उस व्याख्यान के सम्पादित अंश।

धर्मनिरपेक्षता को समझना जितना आसान है, उतना ही मुश्किल है इसे परिभाषित करना। हालांकि इस शब्द का प्रयोग बहुतायत से होता है, लेकिन राजनीतिशास्त्री और समाजशास्त्री इस बात पर एकमत नहीं हैं कि किस विषय सामग्री के आधार पर इस शब्द की परिभाषा की जाये। अलग-अलग समय पर अलग-अलग देशों में 'धर्मनिरपेक्ष' और 'धर्मनिरपेक्षता' शब्दों को समाजशास्त्रीय एवं सांस्कृतिक संदर्भों में अलग-अलग अर्थ दिये गये हैं।

शुरू में यह शब्द 'धार्मिक' के विपरीत अर्थों में काम में लिया जाता था, लेकिन धीरे-धीरे अर्थ बदलता गया और 16वीं सदी में इसे समाजशास्त्रीय संदर्भों से जोड़ दिया गया। एन्साइक्लोपीडिया ऑफ रिलीजन के अनुसार, "सेक्यूलरिज्म" एक विचार धारा है। इसे माननेवाले हर प्रकार की अलौकिकता को अस्वीकार करते हैं और वैयक्तिक नैतिकता एवं सामाजिक संगठनों के आधार के रूप में गैरधार्मिक अथवा अधार्मिक सिद्धांतों का प्रतिपादन करते हैं।

एन्साइक्लोपीडिया अमेरिका में 'सेक्यूलरिज्म' की रोचक परिभाषा दी गयी है, इसके अनुसार, "सेक्यूलरिज्म एक नीतिशास्त्रीय व्यवस्था है जो प्राकृतिक नैतिकता के सिद्धांत पर आधारित है और धर्म एवं अलौकिकता से स्वतंत्र है।" सन् 1846 में जॉर्ज जे. होलियोके ने पहली बार इंग्लैंड में सेक्यूलरिज्म को एक विधिवत दार्शनिक मत के रूप में प्रतिपादित किया। इसका पहला सिद्धांत है विचार की स्वतंत्रता अर्थात् अपने

लिए सोचने का व्यक्ति का अधिकार, इसी में मत-वैभिन्य का अधिकार भी शामिल है। सेक्यूलरिज्म नैतिक दायित्व के आधार के बारे में, ईश्वर के अस्तित्व के बारे में, आत्मा की अमरता के बारे में और विवेक की सत्ता के बारे में महत्वपूर्ण प्रश्नों के विचार-विमर्श के अधिकार को भी मान्यता देता है।

सत्रहवीं और अठारहवीं शताब्दी में यूरोप और पाश्चात्य देशों में सेक्यूलरिज्म की नींव काफी मजबूत हो चुकी थी, फ्रांसीसी, अमेरिकी, रूसी क्रांतियों और दक्षिण अमेरिका, एशिया और अफ्रीका में हुई क्रांतियों ने मानवता तथा सेक्यूलरिज्म के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभायी। सेक्यूलरिज्म एक पाश्चात्य अवधारणा है। संस्कृत समेत भारत की किसी भी भाषा में ऐसा कोई शब्द नहीं मिलता जो सेक्यूलरिज्म की पाश्चात्य अवधारणा को सही-सही निरूपित करता हो। कुछ सरकारी क्षेत्रों में काम में लिया जाने वाला शब्द 'धर्मनिरपेक्षता' गलत और भ्रामक अर्थ देता है। भारतीय संदर्भ में जिसे हम धर्म कहते हैं वह पाश्चात्य शब्द 'रिलिजन' से कहीं व्यापक है, धर्म में, न्याय, नैतिकता, नीतिशास्त्र, सुव्यवस्था और विवेक आदि कई अवधारणाएँ सम्मिलित हैं। कोई भी राष्ट्र इन मूलभूत मानवीय मूल्यों से रहित नहीं हो सकता।

जन्म से लेकर मृत्यु तक धर्म भारतीयों के जीवन से जुड़ा है। यदि हम बल-प्रयोग से अथवा बल-प्रयोग के बिना दूसरे पर अपनी धार्मिक सभ्यता न थोपने के संदर्भ में पाश्चात्य सेक्यूलरिज्म को समझना चाहें तो यह बात तो भारत के समूचे इतिहास में दिखाई देती है। विरोधी विचारों-अवधारणाओं को समझने की एक परम्परा रही है। सनातन धर्म में (हिंदुत्व के बजाय में इस शब्द का प्रयोग करना चाहूंगा) चार्वाक, बौद्ध धर्म, जैन धर्म दर्शन की स्वीकृत शाखाओं की तरह समादृत हुए हैं। भारतीय दर्शनशास्त्र का इतिहास साक्षी है कि यहां हमेशा संश्लेषण की राह अपनायी गयी है। इसी संश्लेषण और स्वीकार करने की भावना ने सेक्यूलरिज्म के भारतीय स्वरूप के विकास में प्रमुख भूमिका निभायी है। हमारे लिए सेक्यूलरिज्म का अर्थ धर्म का नकार नहीं है। भारतीय धर्म को जीवन के एक अभीष्ट के रूप में देखते हैं। एक ऐसी सम्पूर्णता जो जीवन में प्राप्त करनी चाहिए। इस जीवन में राजनीति भी शामिल है।

देश के बंटवारे के पूर्व की घटनाओं ने हमारे संविधान-निर्माताओं को बहुत प्रभावित किया था। गांधी और नेहरू ने भारत के सामाजिक एवं राजनीतिक सोच को दिशा और गति दी। गांधी के अनुसार 'सेक्यूलरिज्म' का अर्थ था सर्वधर्म समभाव। नेहरू ने भी इसे स्वीकारा। यूरोपीय इतिहास के जानकार के रूप में नेहरू धर्म और

राज्य की सम्बद्धता के दुष्परिणामों से अच्छी तरह परिचित थे, उन्होंने कहा, "सेक्यूलर राज्य का मतलब धर्म को अस्वीकार करने वाला राज्य नहीं है, इसका मतलब है धर्म और चेतना की स्वतंत्रता। ऐसे राज्य में उन्हें भी पूरी स्वतंत्रता होती है जो किसी धर्म को नहीं मानते। शर्त सिर्फ यह है कि वे एक दूसरे के जीवन में हस्तक्षेप न करें। धर्मनिरपेक्षता को एक राजनीतिक आदर्श के रूप में स्वीकारना एक बहुधर्मी समाज की आवश्यकता थी। विभाजन के पूर्व की और बाद की घटनाओं से जिस तरह का भययुक्त माहौल बन गया था, उसमें ऐसी कहीं कोई अवधारणा जरूरी थी जो सभी वर्गों में विश्वास की भावना जगा सके। परीक्षा की इन घड़ियों ने धर्मनिरपेक्षता के एक भारतीय स्वरूप को आकार दिया।

शासन और शिल्प को धर्म से पृथक रखने का जवाहरलाल नेहरू का विचार स्वतंत्र भारत के लिए एक स्वीकृत सत्य बन गया। एक बहुधर्मी एवं बहुजातीय समाज में सब धर्मों को समान दृष्टि से देखने की धर्मनिरपेक्षता की अवधारणा समाज के अस्तित्व की एक आवश्यकता थी। एक ऐसे समाज में जहां धर्म जीवन का अंग है, धर्मनिरपेक्षता धार्मिक और सेक्यूलर को पृथक करने वाली चीज नहीं हो सकती। वस्तुतः यह एक ऐसी व्यवस्था है जिसमें सभी धर्मों के लोग न्यायपूर्ण व्यवहार की अपेक्षा कर सकते हैं। भारतीय धर्मनिरपेक्षता राजनीति से धर्म को हटाने की नहीं, राजनीति में धर्म की समानता स्थापित करने वाली अवधारणा बन गयी है।

(11)

विनोबा ने धर्मनिरपेक्षता के लिए चार बातें जरूरी बतायीं-अपने धर्म में श्रद्धा, सभी धर्मों के प्रति आदर का भाव, अपने धर्म में सुधार और अधार्मिकता का निषेध। जहां ये चारों बातें होती हैं वहीं सर्वधर्म समभाव होता है।

हमारे संविधान के आमुख में 'सेक्यूलर' शब्द 42वें संशोधन के माध्यम से जुड़ा था जो 1 सितम्बर, 1976 को लागू हुआ। उपराष्ट्रपति एस. राधाकृष्णन ने अपनी पुस्तक 'रिकवरी ऑफ फेथ' में लिखा है, भारत की धार्मिक समदर्शिता को सेक्यूलरिज्म अथवा निरीश्वरवाद से जोड़ना गलत होगा। यहां सेक्यूलरिज्म भारत की प्राचीन धार्मिक परम्परा के अनुरूप है। यहां यह समन्वयकारी अवधारणा है। उनका कहना था कि हमारी धर्मनिरपेक्षता धर्म से प्रजातांत्रिक सिद्धांत को जोड़ती है।

भारतीय सोच में धर्मनिरपेक्षता राजनीति और धर्म के बीच का समीकरण मात्र नहीं है। यह धर्म और करुणा का ऐसा संश्लेषण है जिसमें सहनशीलता, वैश्विकता एवं स्वतंत्रता का सम्मिश्रण है। यह आदर्श आकांक्षा है, एक आदर्श लक्ष्य है, एक उत्पाद भी है और एक प्रक्रिया भी।

1950 में स्वीकृत संविधान के आमुख में सेक्यूलर एवं समाजवादी शब्द नहीं थे। 1976 में एक संशोधन द्वारा ये शब्द जोड़े गये। लेकिन संविधान में कहीं इन्हें परिभाषित नहीं किया गया है। शायद इसे सांविधानिक परिभाषा में बांधने से इसकी विषयवस्तु की गत्यात्मकता बाधित हो जाती। कभी कुछ चीजों को अस्पष्ट छोड़ना भी अच्छा होता है, ताकि अनुभवों की आंच में तपकर उन्हें स्पष्टता मिलती रहे।

भारतीय संविधान राष्ट्रीय अनुभव में आये विरोधाभासी मनोवेगों की जटिल जागरूकता का परिचय देता है। सामाजिक प्रक्रिया के रूप में धर्म की सघनता एवं भारतीय जीवन के ताने-बाने में उसकी घुसपैठ की गहराई इन मनोवेगों का सामान्य स्रोत है। भारत में धर्म के प्रति सांविधानिक रूख के सार के रूप में 'सुधारक सेक्यूलरिज्म' शब्द काम में लिया जाता है। यह शब्द भारतीय राष्ट्रवाद के बहुआयामी अर्थों को उजागर करता है। इसमें समाज-सुधारवाला एवं अन्य धार्मिक-सांस्कृतिक परम्पराओं में इसकी पैठवाला अर्थ भी शामिल है। इस प्रकार धार्मिक आधारों पर टिकी असमानताओं के बोझ तले दबे लोगों की सामाजिक स्थितियों को भी हमारा संविधान सुधारना चाहता है और आंतर-समूही समन्वय का एक सपना भी इसमें अंतर्निहित है।

किसी धर्मनिरपेक्ष राज्य में धार्मिक विश्वास अथवा धार्मिक-आध्यात्मिक मान्यता नागरिक को न तो किसी धर्म या विश्वास को स्वीकारने के लिए बाध्य करेगा और न ही धार्मिक विश्वासों के अनुरूप आचरण करने से किसी को रोकेगा।

भारतीय सोच की यह विशेषता ही है कि एक पाश्चात्य विचार में उसने उन भारतीय अवधारणाओं को देखा जो हमारे शास्त्रों और हमारी सांस्कृतिक विरासत का हिस्सा हैं। गीता में श्रीकृष्ण ने अर्जुन को समझाया है।

यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति।

तस्य तस्याचलां श्रद्धं तामेव विदधाम्यहम्॥

(जो-जो भक्त जिस जिस देवता के स्वरूप को श्रद्धा से पूजना चाहते हैं, उस उस भक्त की श्रद्धा को मैं उसी देवता के प्रति स्थिर करता हूँ।)

हमारे शास्त्रों में इस बात पर जोर दिया गया है कि मानवता का आधार करुणा, समानता और वैश्विक भाईचारा है। इन्हें अपनाकर, इनका पालन करके ही हम एकता की उस स्थिति को पा सकते हैं, जिसे ऋग्वेद में 'यत्र विश्वं भवत्येकनीलम्' कहा गया है।



प्राचीन भारत में राष्ट्रीय चेतना

– किशोर अग्रवाल

(12)

राष्ट्रवाद की अवधारणा मानव में आदिकाल से ही पाई जाती है। व्यक्ति अपने समूह, समाज, जाति, वर्ग, धर्म, राष्ट्र या देश के प्रति प्रेम, श्रद्धा, समर्पण तथा उसकी सुरक्षा का जो भाव अपने मन में रखता है उसे ही राष्ट्रवाद की संज्ञा दी जाती है। यह भाव केवल मनुष्यों में ही पाया जाता हो ऐसा नहीं है। इस तरह की भावनायें पशु-पक्षियों में भी पाई जाती हैं। ये अपने परिवार व समूह के प्रति प्रेम तो रखते ही हैं साथ ही अपने क्षेत्र तथा अपनी व अपने समूह तथा परिवार के सदस्यों की मूलभूत आवश्यकता के लिये कभी कभी मर भी जाते हैं। इनकी इन भावनाओं को राष्ट्रवाद की संज्ञा इसलिये नहीं दी जाती है क्योंकि ये पशु-पक्षी मनुष्यों की भांति किसी देश या राष्ट्र की संरचना से सर्वदा अनभिज्ञ होते हैं। मनुष्य प्रारंभ से ही क्षेत्र, राज्य, प्रान्त, देश व राष्ट्र आदि की सीमाओं को स्वीकार करता रहा है।

प्राचीन भारत में राष्ट्रवाद की अवधारणा विश्व में सबसे प्राचीन और सबसे अधिक प्रखरता के साथ यहां के निवासियों में पाई जाती थी। इसके दो मुख्य कारण हैं-प्रथम इसका विस्तृत और व्यापक भू भाग तथा इसका देश को मात्र एक भू खण्ड न मानकर मां समान मानना तथा तन मन धन से श्रद्धा प्रेम और समर्पण के साथ सुरक्षा के लिये सदैव तत्पर रहना। बच्चे में जन्म से ही देश को माता मानने के संस्कार केवल भारत में ही दिये जाते हैं।

भारतीय संस्कृति में भारत में मनुष्य के रूप में जन्म लेना एक दुर्लभ तथा गर्व करने योग्य बात मानी जाती है। भारत की प्रशंसा में देवता भी इसका गौरव गान करते हैं तथा यहां नर रूप में जन्म लेने के लिये सदैव ललायित रहते हैं। प्राचीन व अखण्ड भारत की भौगोलिक सीमाओं के विषय में 'ब्रह्मांड पुराण' व 'विष्णु पुराण' में लिखा है-दक्षिण पयोधि (हिन्द महासागर) के उत्तर में हिमब्द (हिमालय) के दक्षिण अर्थात् आसेतु हिमाचल से हिन्द महासागर तक का क्षेत्र भारतवर्ष है। इसमें भारतीय सन्तति निवास करती है। इस देश के उत्तर में पश्चिम से पूर्व तक हिमालय धनुष की प्रत्यंचा के समान विद्यमान है। पूर्व से पश्चिम तक भारत का विस्तार ब्रह्मा (बर्मा या म्यांमार) से लेकर हिन्दुकुश (ईरान की पूर्वी सीमा) तक था। इस प्रकार प्राचीन अखण्ड भावना

में वर्तमान भारत, पाकिस्तान, अफगानिस्तान, तिब्बत, बंगलादेश, श्रीलंका, भूटान, एवं म्यांमार सम्मिलित थे। इन भौगोलिक सीमाओं से घिरे भूभाग को वेदों में एक राष्ट्र की संज्ञा देते हुये राष्ट्र के आधारभूत तत्वों, महत्व तथा राष्ट्र के प्रति नागरिकों के कर्तव्यों की विशद व्याख्या की गई है। वेदों में राष्ट्रवाद तथा राष्ट्र निर्माण की प्रक्रिया का भी विवेचन है। सम्पूर्ण विश्व में सर्वप्रथम भारत में राष्ट्र के सृजन की अवधारणा को विश्लेषित किया गया है। किसी देश की देदीप्यमानता एवं शोभा तभी तक अक्षुण्ण व चिरकालिक रह सकती है जब तक वहां के नागरिक अपने देश की सांस्कृतिक, सामाजिक, आध्यात्मिक, राजनैतिक और प्राकृतिक परिस्थितियों के अनुरूप व्यवहार करेंगे।

भारत में ऋषि-मुनि देश की रक्षा व कल्याण के लिये तप, जप व यज्ञादि से देवताओं को प्रसन्न करते थे तथा आज तेजोयुक्त सैनिक शत्रुओं को पूरे जोश के साथ अपने पराक्रम से परास्त करते थे। वेदों की भांति पुराणों में भी भारत की कल्पना एक देवी-विष्णु पत्नी अर्थात् भारत माता के रूप में की गई है। भारत में प्रायः काल जगने पर सर्वप्रथम भारत माता की अर्चना निम्न मंत्र के साथ की जाने की परम्परा रही है-

समुद्रवसने देवि पर्वतस्तन मण्डले।

विष्णु पत्नी नमस्तुभ्यं पाद स्पर्श क्षमस्व मे॥

ऋग्वेद जो विश्व का प्राचीनतम ग्रन्थ है उसमें भी समग्र भारतवर्ष की परिकल्पना भारत माता के रूप में करते हुये लिखा गया है-यह राष्ट्र देव जन-जन में ओत-प्रोत है, राष्ट्र की धरती और आकाश के कण-कण में व्याप्त है तथा समस्त राष्ट्र में आनन्द का संचार करती है। यही वह शक्ति है जो राष्ट्र को तेजस्वी, ज्ञान सम्पन्न, प्रतिष्ठावान, शौर्यवान एवं विविध अविष्कारों से युक्त कर धन धान्य से परिपूर्ण करती है। राष्ट्र की सम्पदा का विनाश करने वालों के विरुद्ध क्षात्रशक्ति को आयुधों से सम्पन्न कर जन मानस को राष्ट्र की रक्षा हेतु राष्ट्र नायक के निर्माण की प्रेरणा भी यही देती है। इसका प्रादुर्भाव जनमानस से होता है और इसका वेग झंझागत की भांति प्रचण्ड एवं व्यापक होता है।

प्राचीन भारत में प्रखर राष्ट्रवाद कितना गहराई तक समाया हुआ था इसका अनुमान केवल प्रचलित परम्पराओं से लगाया जा सकता है। ऋषि-मुनि व राजगुरु मातृभूमि को ही सर्वस्व मानते थे तथा राष्ट्र के सर्वतोमुखी विकास एवं समृद्धि की कामना ईश्वर से करते थे। राजतिलक के समय राजा से राष्ट्र की सुरक्षा, स्थिरता और कल्याण की अभिलाषा रखते हुये आशीर्वाद देते थे। नव दम्पति को भी आशीर्वाद देते समय राष्ट्र की समृद्धि के लिये मातृभूमि की सेवा करने का उपदेश भी देते थे।

ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में समाज के चारों वर्णों को एक ही विराट पुरुष परमपिता ब्रह्मा के शरीर अवयवों से प्रादुर्भाव घोषित करके सभी व्यक्तियों में साजतीय एकता का आरोपण किया गया है। यह भी घोषणा की गई कि समस्त भारतवंशी एक ही भारत माता की संतान हैं, हम सभी उसके हैं और वही हमारा पालन-पोषण करती है। ऋग्वेद में यह भी लिखा है कि राष्ट्र द्रोहियों को कदापि पनपने न दें, उन्हें तत्काल समूल समाप्त कर दें। अपने राष्ट्र की भूमि का शोषण करने वालों का विनाश करें और शत्रुओं द्वारा अधिगृहित भूमि को स्वतन्त्र करायें।

बाल्मीकि रामायण में भगवान राम लक्षण से कहते हैं-“जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी।” अर्थात् माँ और मातृभूमि स्वर्ग से भी महान है।

राष्ट्रवाद के विषय में वैदिक ऋषि कहते हैं-“माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्या।” अर्थात् मेरा देवी मेरी माता है और मैं उसका पुत्र हूँ।

यतुर्वेद में भी मातृभूमि को बारम्बार नमन करने का निर्देश है-“नमो मात्रे पृथिव्यै नमो माने पृथिव्याः।”

महर्षि बाल्मीकि, वेदव्यास, कालिदास, भास, भवभूति, भट्ट, भारवि जैसे महाकवियों तथा चाणक्य सूदश प्रखर राष्ट्रवादियों ने अपने काव्य और ग्रन्थों से भारत में प्रचण्ड राष्ट्रवाद की अलख को जगाये रखा। समर्थ गुरुराम दास, गुरु नानकदेव, स्वामी दयानन्द सरस्वती, स्वामी विवेकानन्द जैसे संतों ने राष्ट्रीय अस्मिता के तेज को जनसाधारण के दिलों में उतारा फलस्वरूप, राणा सांगा, राणा प्रताप, गुरुगोविन्द सिंह, छत्रपति शिवाजी, सरदार भगतसिंह जैसे असंख्य देशभक्त प्रखर राष्ट्रवाद के आलोक में राष्ट्रीय गौरव के रक्षार्थ शहीद हो गये।

प्राचीन भारत में राज्याभिषेक के समय राजा को समस्त तीर्थों तथा चारों महासागरों के जल से स्नान करने की परम्परा के पीछे राजा के मन में समस्त भारत में एकता स्थापित करने की इच्छा पैदा करना था। प्राचीन भारत में छोटे-छोटे राज्य अवश्य थे किन्तु एक राज्य का व्यक्ति दूसरे राज्य में विदेशी नहीं माना जाता था। एक राज्य से दूसरे राज्य में आवागमन निर्बाध रहता था। इतिहास साक्षी है कि सिकन्दर के आक्रमण के समय मालव और क्षुद्रक गणराज्यों में घोर शत्रुता थी किन्तु विदेशी आक्रान्ता को पददलित करने के लिये दोनों राज्यों ने शत्रुता भुलाकर संधि कर ली तथा मैत्री प्रगाढ़ करने के लिये पचास हजार युवक युवतियों का विवाह कराया गया। इसी प्रकार महमूद गजनबी ने आक्रमण के समय पश्चिमी भारत के सिन्धु क्षेत्र के महिलाओं ने सैन्य निर्माण हेतु समस्त आभूषण और धनुष की डोरी बनाने के लिये अपने केश भी समर्पित कर दिये। ये राष्ट्रवाद के कुछ अप्रतिम उदाहरण हैं।

राष्ट्रभाषा हिंदी और हम

— महेश चन्द्र शर्मा

राष्ट्रवाद की ऐसी प्रखर और प्रचण्ड जोत, समस्त भारतवासियों के दिलों में आज भी उसी प्रकार प्रज्वलित होती रहती है जिस प्रकार प्राचीन भारत में भारतवंशियों में यह समाई हुई थी। पहले संघर्ष विदेशी आक्रान्ताओं तथा शासकों से स्वतंत्रता प्राप्ति के लिये तथा उनके द्वारा किये जा रहे अत्याचारों व जुल्मों के खिलाफ क्रान्ति के रूप में होता था किन्तु आधुनिक काल में स्वतन्त्र भारत में राष्ट्रवाद का परिदृश्य बदल गया है। आज संघर्ष अपने द्वारा निर्वाचित सरकार के विरुद्ध होता है। भ्रष्टाचार, भूख, भय, जनसुविधाओं की मांग तथा काले धन को विदेशों से वापिस मंगाने के लिए आम जनता एक जुट हो रही है।

आधुनिक समय में देशभक्ति और राष्ट्रवाद व्यक्त करने के तरीके परिवर्तित हो गये हैं। आज देशवासी अपने दिनों में देशभक्ति की भावना संजोये आंतकवादी घटनाओं में मारे गये निर्दोषों के प्रति मोमबत्ती जलाकर श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं। क्रिकेट मैच में हार जीत होने पर अपने अपने ढंग से अपनी भावनाओं को प्रदर्शित करते हैं। कारगिल युद्ध के समय विदेशों के प्रति अपना आक्रोश व्यक्त करने के लिये सड़क पर उतरते हैं। आज हमारे द्वारा भ्रष्टाचार को समाप्त करने के लिये लोकपाल विधायक लाने के लिए अन्ना नेतृत्व में धरना प्रदर्शन करते हैं। राष्ट्रीय पर्वों पर आम नागरिक ध्वजारोहण कर अपने शहीदों को याद करते हैं। गंगा को प्रदूषण से मुक्त कराने की मांग हो या बुनियादी जन सुविधाओं की मांग हो, स्वतन्त्र भारत में यहां के निवासी प्रत्येक बिन्दु पर देशहित को सर्वोपरि मानकर देशभक्ति का परिचय देते हैं।

प्राचीन भारत के राष्ट्रवाद की प्रखरता तथा प्रचण्डता आधुनिक भारत में भी उसी प्रकार विद्यमान है जिस प्रकार यह परतन्त्रता की बेड़ियों में जकड़े भारत में पाई जाती थी। अन्तर केवल इतना है कि पहले संपूर्ण एवं सशस्त्र क्रान्ति के रूप में होता था तथा आज सत्याग्रह व आंदोलनों के द्वारा जनता अपनी भावनायें प्रकट करती है। यह भी आधुनिक भारत की राष्ट्रीय चेतना का ही प्रतीक है। □



(14)

अपनी भाषा के अतिरिक्त किसी अन्य भाषा को पढ़ना, बोलना और उसके वाङ्मय का ज्ञान प्राप्त करना बुरा नहीं है। बुरा है किसी भाषा के व्यामोह में पड़कर स्वभाषा की उपेक्षा करना, उसे अन्य भाषा से हीन समझकर उसमें सिंचित ज्ञानराशि से न अपने को लाभान्वित करना और न उसकी समृद्धि के लिए प्रयास करना। यही सब अंग्रेजी को लेकर हम सब भारतीयों के साथ हो रहा है। हम अंग्रेजी के व्यामोह के मकड़ जाल में ऐसे फंसते जा रहे हैं कि हम राष्ट्रभाषा हिंदी, अन्य भारतीय भाषाओं और उनसे संबंधित उपभाषाओं, बोलियों आदि के महत्व को बिल्कुल भुलाकर अंग्रेजी के पूरे मन से भक्त हो बन गए हैं। वस्तुतः राष्ट्रभाषा हिंदी उन सांस्कृतिक मूल्यों की प्रवाहिका है जो देश के व्यक्ति, परिवार, समाज और राष्ट्र को सुदृढ़ बनाते हैं। साथ ही हिंदी उस ज्ञान और विज्ञान से परिचित कराती है, जिसने हजारों वर्षों से भारत को सांस्कृतिक और जीवन मूल्यों के एकसूत्र में पिरोए रखा।

उत्तर भारत से लेकर दक्षिणी भारत, पूर्व से लेकर पश्चिम तक भारत के सभी राज्यों, क्षेत्रों, भूभागों में प्रचलित भाषाओं के प्रचलन के बाद भी संपूर्ण भारत में व्यक्तिगत, पारिवारिक और सामाजिक मूल्य और लोक व्यवहार के तत्त्व समान रूप से जुड़े रहे। इसका मुख्य कारण भारतीयों का स्वभाषा प्रेम ही था क्योंकि भारत की सभी भाषाओं का मूलस्रोत देवभाषा संस्कृत रही है या संस्कृत ने भारत की सभी भाषाओं को प्रभावित किया है। भाषा का उद्देश्य शिक्षा प्राप्त कर मात्र भौतिक प्रगति और उन्नयन करना नहीं है, बल्कि सामाजिक उत्थान करना भी है। भारतीय समाज का जितना विकास संस्कृत भाषा ने किया है, संभवतः उतना विश्व की किसी भी भाषा ने नहीं किया। संस्कृत भाषा के उत्कृष्ट साहित्य रामायण, महाभारत, नीतिशास्त्रों को आधार बनाकर हिंदी में अनेक ग्रंथ लिखे गए हैं, जिन्होंने हिंदी भाषा और साहित्य को ही समृद्ध नहीं किया, बल्कि लोकरंजन के साथ-साथ लोकमंगल भी किया। भारतीय समाज को मूल्य चेतना प्रदान की और मार्गदर्शन किया। भारतीय इतिहास के ऐसे दो पड़ाव हैं, जिनसे यह परिलक्षित और प्रमाणित होता है कि हिंदी ने संपूर्ण भारत का कितना उपकार किया। पहला प्रस्थान बिन्दु मध्यकाल का था जब भारत में विधर्मी आक्रमण और अत्याचारों के फलस्वरूप सांस्कृतिक पुनर्जागरण का युग आरंभ हुआ और भक्ति आंदोलन खड़ा हुआ जिसका नेतृत्व हिंदी के महान कवियों तुलसी, सूर,

मीरा आदि ने किया और इस आंदोलन के सूत्रों ने अन्य सभी भारतीय भाषाओं के साहित्य में भी संक्रमण किया। हिंदी के उत्कर्ष का दूसरा प्रस्थान बिन्दु भारत के स्वतंत्रता आंदोलन का था जब न केवल हिंदी के प्रसिद्ध महान कवियों ने राष्ट्रीय कविताओं के माध्यम से भारत में स्वतंत्रता की चेतना का बिगुल बजाया, बल्कि भारत के कस्बों और गांवों में कवियों और लोक कवियों की देशभक्ति और राष्ट्रीय चेतना की कविताएं और गीत गली-गली में गूंजने लगे और लोगों को प्रोत्साहित करने लगे। साहित्यकार भी क्रान्ति की रचनाएं लिखने लगे, जिनमें मैथिलीशरण गुप्त, बालकृष्ण शर्मा नवीन, सोहन लाल द्विवेदी, प्रेमचंद, माखनलाल चतुर्वेदी, दिनकर, निराला आदि प्रमुख रहे हैं।

परंतु, स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात धीरे-धीरे हम हिंदी की शक्ति, सामर्थ्य और क्षमता की भूलकर अंग्रेजी के अंधभक्त हो गए हैं और इस अंग्रेजी के प्रमाद में हिंदी के प्रयोग के साथ उसकी शक्ति और क्षमता को बढ़ाने में पूर्ण उदासीनता और अकर्मण्यता का परिचय दे रहे हैं जबकि हिंदी केवल भाषा ही नहीं, यह भारत की स्वत्व, अस्मिता और संस्कृति की भी प्रतीक है। समाज में चेतना जागरण का भाव, देशभक्ति का भाव, अपनी संस्कृति और जीवन मूल्यों का ज्ञान भाषा के माध्यम से ही दिया जा सकता है। हिंदी वह भाषा है, जिसके माध्यम से हमने स्वतंत्रता आंदोलन को सारे देश में गुंजायमान किया और उसके संदेश को घर-घर तक पहुंचाया। आज भी हिंदी ही हम सबको एकता के सूत्र में बांध सकती है और समाज तथा राष्ट्र को समृद्धशाली बना सकती है।

हम यह भूल गए हैं कि संस्कृत ने जो ऊर्जा और शक्ति प्राप्त की वह केवल कहानी, कविता आदि के लेखन से नहीं, बल्कि ज्ञान के विविध विषयों नीति, ज्योतिष, संगीत, इतिहास-पुराण, भूगोल-खगोल के भी बहुआयामी लेखन इसमें हुए। किन्तु हिंदी आज कविता, कहानी, व्यंग्य, नाटक आदि के लेखन तक सिमट कर रह गई है। हिंदी में भारतीय समाज से संबंधित समाजशास्त्र, राजनीति शास्त्र, अर्थशास्त्र, इतिहास, मनोवैज्ञानिक विषयों की रचनाओं का लेखन बहुत कम हो रहा है। यदि हो भी रहा है तो वे या तो पश्चिमी ग्रंथों के अनुवाद हैं या पाश्चात्य सिद्धांतों का अनुकरण मात्र हैं। इनके लेखक भारतीय संस्कृति, परिवेश और समाज के परिप्रेक्ष्य में उक्त विषयों की रचनाओं का मौलिक लेखन नहीं कर पा रहे हैं।

हिंदी एक अंतर्राष्ट्रीय भाषा भी है। अनेक देशों के विश्वविद्यालयों में एक विषय के रूप में हिंदी की पढ़ाई होती है। दक्षिण अफ्रीका, मॉरीशस, सूरीनाम, श्रीलंका, म्यांमार, नेपाल, पाकिस्तान जैसे देशों में हिंदी का व्यापक प्रचार-प्रसार है। हिंदी एक

जीवनचर्या और संस्कार की भाषा है। इसे देश के रक्षाबंध की भाषा कहते हैं। आजादी की लड़ाई के लिए महात्मा गांधी, लोकमान्य तिलक और सुभाषचंद्र बोस ने हिंदी को ही सत्याग्रह और आंदोलन के लिए माध्यम-भाषा के रूप में अपनाया। दयानंद सरस्वती ने आर्य-समाज के प्रचार के लिए हिंदी का ही चयन किया और इसे संस्कृति-भाषा की संज्ञा दी। सुभाषचंद्र बोस की आजाद हिंद फौज की व्यवहार-भाषा हिंदी ही थी। इस प्रकार हिंदी भारत की हृदय-भाषा है, रूसी साहित्यकार श्री वारान्निकोव ने रामचरित मानस का रूसी-भाषा में पद्यानुवाद किया था, इसलिए रूस भी हिंदी क्षेत्र हैं।

अतः आवश्यकता इस बात की है कि हिंदी के रचनाकार, लेखक साहित्यकार हिंदी वाङ्मय को भी सुदृढ़ और सशक्त बनाने की दिशा में प्रयास करें। साहित्य में कविता, कहानी, उपन्यास, नाटक, एकाकी, व्यंग्य के लेखन का महत्व तो है ही, परन्तु अन्य विविध ज्ञानों को अपनी भाषा में उन तक पहुंचाना भी कम महत्वपूर्ण नहीं है। इसलिए लेखक हिंदी के लेखकों, साहित्यकारों और हिंदी प्रेमियों से यह आग्रह करता है कि वे अन्य वैचारिक विषयों पर भी अपनी लेखनी उठाएँ।

□

(15)

प्रगति का अर्थ

अनेक पुस्तकों का संकलन करने से ज्ञान की प्राप्ति नहीं होती। अपने परिश्रम कि बिना आज तक किसी ने ज्ञान प्राप्त नहीं किया। जो कम से कम काम करके अधिक से अधिक लाभ पाने के अभिलाषी हैं, उनका जीवन अपूर्ण रहता है।

परिश्रमी, कर्मठ तथा अनुशासित युवा ही कल अच्छा वैज्ञानिक, कुशल प्रशासक, योग्य शिक्षक एवं समाज को प्रगति की राह दिखलाने वाला नेता बन सकता है। संसार में मनुष्य की प्रतिष्ठा का आधार उसका कर्म ही है। कर्मठता के अभाव में प्रतिभा एवं योग्यता भी कुंठित हो जाती है।

ईश्वर, ऐश्वर्य की अनुभूति है

– प्रदीप कुमार (कनाडा)

रामकृष्ण परमहंस को गले का कैंसर था। खाना नहीं खा सकते थे इसलिए अति क्षीण हो गए थे। शिष्यों ने कहा मां काली से प्रार्थना करो ताकि कष्ट कम हों। रामकृष्ण झिझके किंतु शिष्यों के निरंतर आग्रह पर मंदिर में गए और कुछ समय बाद बाहर निकल आए। शिष्यों ने पूछा कि मां काली ने क्या कहा। रामकृष्ण बोले कि मां ने कहा कि तुझे अपने मुंह से क्यों खाने की जरूरत है तू तो हजारों मुंह से खा रहा है। मानव समाज के लाखों मुंह रामकृष्ण के हो चुके थे। सारा संसार उनका देह और मन था। ऐसा ही होता है ईश्वरमय व्यक्ति का जीवन, विशाल और समृद्ध।

ईश्वर शब्द ऐश्वर्य से आया है। ऐश्वर्य का अर्थ है पूर्ण समृद्धि, भौतिक और आध्यात्मिक, बाहरी अभी और आंतरिक भी। ईश्वरमय होने का अर्थ पूजा नहीं, शास्त्रों को पढ़ना पढ़ाना नहीं, मंदिर बनाना नहीं है। ईश्वर प्राप्ति का अर्थ है समग्र समृद्धि, समग्र जीवन और समग्र चेतना और ये व्यक्ति को चार परिवारों की प्राप्ति और उनके प्रति धर्म पालन से मिलती है।

प्रथम परिवार नितांत निजी और व्यक्तिगत होता है जिसके बिना व्यक्ति का अस्तित्व असंभव है। इस परिवार के चार आयाम देह, मन बुद्धि और आत्मा हैं। इन आयामों का गहन अनुभव और उनके प्रति धर्म निर्वाह प्रथम परिवार की प्राप्ति है। देह को उपयुक्त भोजन, नींद, विश्राम, काम और व्यायाम देना देह धर्म का, भावनाओं के नियंत्रित किंतु अविरल प्रवाह मन धर्म का, विवेक, विश्लेषण और तर्क बुद्धि धर्म का और उपरोक्त तीनों को एक सूत्र में बांधना आत्म धर्म का निर्वाह है। प्रथम परिवार से अहम निर्मित होता है जिसके बिना स्वस्थ जीवन असंभव है।

समृद्धि का अगला सोपान दूसरे परिवार की प्राप्ति से होता है। माता पिता, पति पत्नी, बच्चे, संबंधी मित्र, गुरु आदि इस परिवार के सदस्य होते हैं। यह परिवार व्यक्ति को निज अहम की संकीर्ण सीमाओं से बाहर निकालता है, चेतना में विस्तार लाता है। व्यक्ति के अहम में अब अनेकों व्यक्ति सम्मिलित होते हैं जो सुखद अनुभव है सामाजिक संबंधों और उनकी प्रेममय ऊर्जा का। व्यक्ति अभी भी स्वार्थी होता है किन्तु उसके स्वार्थ में विशालता होती है जिससे अनेक लाभावित होते हैं।

समृद्धि की तीसरी अवस्था संपूर्ण समाज, देश और संसार से जुड़कर प्राप्त होती है। जब भारतीय मनीषियों ने वसुधैव कुटुंब+कम की बात कही तो वे इस तीसरे परिवार की अनुभूति के बारे में बता रहे थे। इस स्तर पर व्यक्ति पंच तत्वों पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश के साथ समन्वय स्थापित करता है। यह समन्वय एक अज्ञात मात्रा है जिसमें व्यक्ति अस्तित्व के मूल रहस्य में प्रवेश करता है। इस मात्रा में न केवल जीवन की विशालता की अनुभूति होती है बल्कि मृत्यु की विराटता के दर्शन भी होते हैं।

समृद्धि और ऐश्वर्य का अंतिम सोपान चौथे परिवार में प्रवेश से होता है। इस परिवार के पूर्वज सदस्य कृष्ण, बुद्ध, मोहम्मद, जीसस, नानक आदि हैं। यद्यपि हर व्यक्ति इस पारिवारिक परम्परा का अंग होता है किंतु इस धरोहर को विस्मृत कर देता है, अपनी अमूल्य विरासत को भूल जाता है। इस परिवार के प्रति धर्म निर्वाह मुक्ति, मोक्ष और निर्वाण की प्राप्ति से होता है जो उन ऋषि पूर्वजों की अपेक्षा है। चौथे परिवार की अनुभूति के साथ ही व्यक्ति पूर्ण ऐश्वर्यवान और ईश्वरमय हो जाता है। ऐश्वर्य और ईश्वर की अनुभूति में ये चार परिवार एक दूसरे में विलीन हो जाते हैं क्योंकि वे एक दूसरे के पूरक हैं और एक समग्र सत्य के चार आयाम हैं। यह बिंदु जीवन का उच्चतम शिखर होता है।

(16)

□

अहंकार

विश्वास मनुष्य की कमजोरियों से टूटता है। विश्वास को सबसे अधिक ठेस अहंकार से लगती है। अहंकार अहम् या 'मैं' पर आधारित होता है। मनुष्य बेवकूफियां और गलतियां इसलिए करता है, क्योंकि वह इस सचाई को नहीं समझ पाता कि प्रत्येक व्यक्ति की आत्मा उसी परमात्मा का अंश है जो सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापी और सर्वज्ञ है। आत्मा में 'मैं' या अहम् के लिए कोई स्थान नहीं होता। इससे मनुष्य परमात्मा से और दूर हो जाता है।

भारतीय संस्कृति में समन्वय-भावना

- लखनलाल मेहरोत्रा

भारतीय संस्कृति में समन्वय की विशेष स्थिति है, बिना समन्वय के वह आगे बढ़ ही नहीं सकती। अतीत, वर्तमान और भविष्य को समन्वित करने वाली संस्कृति ही भारतीय संस्कृति है। यदि आप भारत के पुरातन इतिहास को देखें, तो वैज्ञानिक कहते हैं कि जब भारत की पुण्यभूमि में पुरुष का पदार्पण हुआ तो सुदूर अतीत में उसका विश्लेषण हमारे यहां के वैज्ञानिकों ने तो किया ही, एक विदेशी वैज्ञानिक ने भी किया-‘लेकी’ उनका नाम है। उन्होंने इसका विश्लेषण किया कि मनुष्य कितना पुराना है। जहां-तहां पुरातत्त्व की खोज करते-करते शिवालिक की पहाड़ियों में उन्होंने कुछ ऐसी अस्थियाँ खोज निकालीं जिनसे यह पता लगता है कि उस समय शिवालिक की पहाड़ियों में जो मानव विचरण करता होगा, वह आज के मानव से थोड़ा छोटा था-एक और एक तिहाई मीटर की उसकी ऊँचाई मानी गई है, उसका नाम उन्होंने ‘रामापीथेकस’ दिया। उसको मूलतः लंगूर माना जाता है। जब मनुष्य के जन्म की कहानी का और प्रकृति में उसके क्रमिक विकास की प्रक्रिया का मैं अध्ययन करता हूँ तो सोचता हूँ कि मनुष्य आगे कहां तक जाएगा। जब लेकी के ग्रन्थों से मैं यह सब पढ़ता हूँ तो आश्चर्यचकित हो जाता हूँ कि हमारे पुराणों में कहां तक उसकी चर्चा है। दशावतार पुराण एक पुराण है जिसमें भगवान् विष्णु के दस अवतारों का उल्लेख है और आप देखेंगे कि उस पौराणिक दशावतार की कितनी अधिक समानता है लेकी के विचारों से और डार्विन के क्रमिक विकासवाद के सिद्धान्त से-

मत्स्यकूर्मवराहाश्च नरसिंहोऽथवामनः।

रामो रामश्च रामश्च बुद्धो कल्की च ते दशाः॥

वृक्षों के उपरान्त जब जीवन का आविर्भाव आगे होता है तो हम ‘मत्स्य’ पर, मछली पर आते हैं। जीवन की आदि रचनाओं को वैज्ञानिक भी मत्स्य से आरम्भ करते हैं और मानते हैं कि जीवन ने जब एक निश्चित आकार धारण किया तो उसकी आदि प्रतिमा ‘मछली’ ही मानी गई। यह शक्ति का संचय हो रहा है और शक्ति का समन्वय हो रहा है-मैं समन्वय के महत्त्व पर आपसे चर्चा कर रहा हूँ। ‘मत्स्य’ की सारी जीवन-प्रक्रिया जल के बीच में बीतती है, जब पृथ्वी पर बहुत कम पृथ्वी रही होगी, जल ही जल रहा होगा तो मछली ही मछली रही होगी। लेकिन फिर ऐसा युग आया जब

पृथ्वी प्रकट हुई धरती के रूप में और मत्स्य को मौका मिला कोई ऐसा रूप धारण करने का कि वह धरती पर आकर विरण करने लगे, तो नई शक्ति का विकास हो जाता है-वह है संस्कृति, वह है परिमार्जन की प्रक्रिया और उसमें हम मत्स्य से ‘कूर्म’ पर आ जाते हैं, कच्छप या कछुए पर आ जाते हैं- जो जल में भी रहता है और थल में भी। आगे शक्ति का समन्वय और संस्कृति का विकास होने पर कूर्म से ‘वराह’ की ओर जाते हैं-उन प्राणियों की ओर जाते हैं जिसे ‘नृसिंह’ कहा जाता है। जहां पाशवी शक्तियों और मानवी शक्तियों का ऐसा राग-अनुराग हो रहा है कि सृष्टि में, आविर्भाव की प्रक्रिया में प्रकृति पुनः नये कदम उठाने के लिए तैयार है। उस समन्वय की प्रक्रिया में एक कदम और आगे बढ़ा देती है और फिर ‘वामन’ आ जाता है, अभी मनुष्य अपनी पूरी ऊँचाई तक नहीं पहुंचा है। तो यह रामापीथेकस जो ‘वामन’ है, बौना है, जो हमसे छोटा है वह भी संस्कृति के नये चरण ले रहा है और हमें पूर्ण मानव के विकास की ओर उन्मुख कर रहा है। इस प्रकार संस्कृति वह प्रक्रिया है जो नवीन-नूतन, नूतनतर, नूतनतम शक्तियों का विकास करती चली जाती है और अतीत को वर्तमान से, वर्तमान को भविष्य से जोड़ती है। यह है समन्वय का महत्त्व और उसमें संस्कृति का योगदान।

(17)

लेकिन आगे चलकर भारत में जिस संस्कृति का आवेश, समावेश हुआ, उस संस्कृति में एक ऐसी विशेषता रही जो शायद दूसरी संस्कृतियों में हमें इतने बल से नहीं मिलती, सब जगह होगी तो अवश्य क्योंकि प्रकृति की प्रक्रिया का एक अंग है-संस्कृतियों का निर्माण। किन्तु हमारे यहां वह विशेष रूप से प्रस्फुटित हुई है, वह है दृष्टि या दर्शन की समग्रता। हमारे सामने घर्षण और संयोजन बराबर होता रहता है। लेकिन हमारी संस्कृति ने हमें यह बताया है कि संयोग का समन्वय का महत्त्व जीवन में बहुत अधिक है-

पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते।

पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

जब विश्व के व्यापक रूप का व्याख्यान होता है तो कहते हैं कि वह पूर्ण है और जो मेरे सामने यह समस्त सृष्टि की प्रक्रिया है, यह भी पूर्ण है, लेकिन उस पूर्ण से मैं यह पूर्ण ले लेता हूँ और विशेषता यह है कि पूर्ण से पूर्ण लेकर पूर्ण की अवशेष रह जाता है। यह शून्य योग की क्रीड़ा नहीं है कि शून्य जोड़ों और शून्य से शून्य घटाओं तो शून्य ही बचता है। अपितु इसमें पूर्ण से पूर्ण निकाल लिया, उसके बाद भी जो बचा, वह पूर्ण ही है-यह है हमारी संस्कृति की विशिष्टता।

शिष्टाचार

— प्रो. प्रभुनाथ द्विवेदी

गीता में भगवान् कृष्ण ने स्पष्ट कहा है—

“यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।

स यत्प्रमाणं कुरुते लोक स्तदनुवर्तते॥”

अर्थात् श्रेष्ठजन, आप्तपुरुष जैसा आचरण करते हैं, बाकी लोग भी वैसा ही करते हैं। श्रेष्ठजन जो कुछ करते हैं, लोक उसी का अनुसरण करता है। नीतिशास्त्र में भी यही कहा गया है—“महाजनो येन गतः स पन्थाः।” अर्थात्, बड़े लोग जिस मार्ग से जाते हैं, शेष लोगों के लिए भी वही मार्ग है। मार्ग का अर्थ है—आचार, पद्धति अथवा जीवन व्यतीत करने का तरीका या उपाय। उपनिषद् में मनुष्य मात्र के लिए पूरी आयु तक जीने का उपाय बताया गया है—

“कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः।”

अर्थात्, सत्कर्म करते हुए ही सौ वर्ष तक जीने की इच्छा करे। यदि पूर्ण आयु तक जीना है तो शिवसंकल्प युक्त मन से पुण्यकर्म में लगा रहे। वस्तुतः यही शिष्टाचार है। महर्षियों ने डाकू रत्नाकर को शिष्टाचार का ही उपदेश दिया था। शिष्टाचार है—‘आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्।’ जो अपने को प्रतिकूल लगे, अपने लिए अच्छा न लगे, उसका व्यवहार दूसरों के लिए न करे। यदि कोई मेरी अंगुली निर्दयतापूर्वक दबाये तो निश्चय ही मुझे पीड़ा होगी और उस पीड़ा से मैं छटपटाऊंगा। अतः शिष्टाचार यही है कि मैं जीवमात्र को पीड़ा न दूं।

धम्मपद में भगवान् बुद्ध ने कहा है—

“न हि वेरेण वेरानि समंतीध कुदाचनं।

अवेरेण च सम्मंति एस धम्मो सनंतनो॥”

अर्थात् वैर से वैर कभी भी शांत नहीं होता। अवैर अर्थात् मैत्री भाव ओर क्षमा से वैर शान्त होता है। यही सनातन धर्म है। धम्मपद का यही भाव सन्त कबीर साहेब की इस उक्ति में है—

“जो तोक्कूं कांटा बुवै ताहि बोउ तू फूल।”

अर्थात्, जो तुम्हारे लिये मार्ग में कांटे बिछाये, तुम उसके लिए मार्ग में फूल बिछाओ। तात्पर्य यह हुआ कि बुराई के बदले बुराई मत करो, भलाई करो। शिष्टाचार

भारतीय इतिहास के पृष्ठों को पलटने पर समन्वय की यह भावना सर्वोच्च दृष्टिगत होती है। आदि सभ्यता सिन्धु की सभ्यता कही जाती है, वह ग्रामीण संस्कृति है लेकिन उसके बीच हड़प्पा और मोहनजोदड़ों के खण्डहरों को देखिये—नागरिक विकास की प्रक्रिया काफी ऊपर पहुंच चुकी हैं, संस्कृति के नाना रूपों को जन्म मिल रहा है। वहां आपको कांस्य की नर्तकी की प्रतिमा मिली है जो एक प्रतीक बन गई है सिन्धु संस्कृति की—तो आपके सामने नृत्य भी है, संगीत भी और आपके सामने कुछ अन्य संस्थायें हैं जिनका जन्म सिन्धु घाटी की सभ्यता में हुआ होगा या उससे भी बहुत पहले हुआ होगा। लेकिन हमारे सामने सिन्धु सभ्यता के सभी प्रतीक उस समय से लेकर आज तक विद्यमान हैं। जैसे एक प्रतिमा मिलती है—पद्मासन में एक मूर्ति बैठी हुई है, उसके चारों तरफ पशु हैं, वह प्रतिमा ध्यानमग्न है, उसकी जटायें हैं। यह प्रतिमा शिव की है, योग की साधना में लीन महायोगी शिव की है।

कहा जाता है कि ज्ञानयोग ही सबसे अच्छा है—किन्तु कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग एक ही हैं, यह भगवान् कृष्ण ने हमें गीता के माध्यम से बताया। जो कर्मयोग है, वही ज्ञानयोग है, जो ज्ञानयोग है, वही शक्तियोग है—

एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति।

तत्त्व को कौन समझा है? सही दृष्टि किसकी है? जो सांख्य और योग, ज्ञानयोग और कर्मयोग में भेद नहीं करता—

यत्सांख्यैः प्राप्यते स्थानं तद्योगैरपि गम्यते।

जिस लक्ष्य की प्राप्ति आप करना चाहते हैं, वह आपको सांख्य से भी मिल सकता है और योग से भी—उसमें बहस की आवश्यकता नहीं। अगर आपकी अभिरूचि ज्ञान में है तो आप बेशक वह सड़क पकड़ लीजिये। जैसा कि बुद्ध भगवान् ने कहा है—‘मार्ग की स्थिति है, यात्री की नहीं—

There is a path but there is no traveller.

आप ज्ञान का मार्ग लेना चाहते हैं, ले लीजिये, आप कर्म का मार्ग लेना चाहते हैं, ले लीजिये, आप भक्ति का मार्ग लेना चाहते हैं, ले लीजिये—

रुचीनां वैचित्र्यादृजुकुटिलनानापथिजुषाम्।

नृणामेको गम्यस्त्वमसि पयसामर्णव इव॥



यही है।

शिष्टाचार हमारी भारतीय संस्कृति का एक महत्वपूर्ण घटक है। बिना शिष्टाचार के, समाज में नैतिक मूल्यों की स्थापना नहीं होती। व्यक्ति के चतुर्विध लक्षण में एक सदाचार=शिष्टाचार भी है। भारतीय संस्कृति के मूल में धर्म एक अनिवार्य तत्व के रूप में विद्यमान हैं।

शिष्टाचार के माध्यम से मनुष्य सभी सिद्धियां प्राप्त करने का अधिकारी बन जाता है-

**“अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते ह्यायुर्विद्यायशोबलम्॥”**

बड़ों का अभिवादन करने वाले तथा नियमपूर्वक वृद्धों की सेवा करने वाले की आयु, विद्या, यश और बल-ये चारों बढ़ते हैं। आचार को ही परम धर्म माना गया है-‘आचारः परमो धर्मः।’ सदाचार से आयु, अभीष्ट गति (जीवनदशा), अक्षय धन प्राप्त होता है और सदाचार सारे अशुभों का निवारण कर देता है।

किसी देश में परम्परा से चला आने वाला जो शिष्टजनों का आचार है, वही सभी वर्णों और पीढ़ियों के लिए सदाचार कहा जाता है।

इस प्रकार, शास्त्र, संस्कृति और परम्परा में आचार=सदाचार=शिष्टाचार का स्वरूप और महत्व प्रस्तुत किया गया। हमारे दैनन्दिन क्रियाकलापों में, लोक में शिष्टाचार की मर्यादा आज भी है, सामाजिक सम्बन्धों की मर्यादा तोड़कर यदि पुत्र अशिष्ट व्यवहार करने लगे तो क्या वह पुत्र, पुत्र कहलाने का अधिकारी रहेगा? कदापि नहीं। जो अपने सुचरित से माता-पिता को प्रसन्न रखता है, वही वास्तव में पुत्र है-‘यः प्रीणयेत्सुचरितैः पितरं स पुत्रः’ पुत्र के शिष्टाचार का वर्णन गोस्वामी जी ने भी किया है-

“प्रातःकाल उठि कै रघुनाथ। मातु पिता गुरु नावहिं माथा।”

नित्यप्रति देखी जाने वाली एक मामूली सी बात की जड़ में बैठा हुआ शिष्टाचार देखिए। चारपाई में सिरहाना और पायताना-ये दो हिस्से होते हैं। शिष्टाचार यह है कि पहले तो कोई छोटा अपने बड़े के साथ या सामने चारपाई पर बैठता नहीं (था) किन्तु यदि परिस्थितिवश उसे बैठना ही पड़े तो वह सिरहने की ओर अपने बड़े को बैठाये और स्वयं चारपाई के पायताने की ओर बैठे।

यदि बैठे हैं तो अपने से बड़े के आने पर उठकर खड़ा हो जाना, यदि खड़े हैं तो आने वाले से आगे बढ़कर मिलना तथा अभिवादन करना, यथोचित आतिथ्य

करना-यह सब नित्य जीवन के शिष्टाचार हैं। कहावत है-

**“आवत आदर ना दियो जात न दीनो हस्त।
दूनो फिर ना बहुरिहैं पाहुन और गिरहस्त।”**

यदि पंक्ति में भोजन कर रहे हैं, तो पूरी पंक्ति के साथ उठना ही शिष्टाचार है भले ही किसी व्यक्ति ने अन्यों से पहले भोजन करना समाप्त कर लिया हो। किन्तु यदि पंक्ति में अधिकांश ने भोजन पूरा नहीं किया है तो अकेले उठकर चला जाना शिष्टाचार के विरुद्ध माना जाता है।

किसी वस्तु की प्राप्ति में अपने बड़े, बुजुर्ग, स्त्री, बालक और विकलांग आदि असमर्थ जन को पहले अवसर देना, यह शिष्टाचार है। आजकल देखने में आता है कि वृद्धजन रेल या बस का टिकट लेने के लिए पंक्ति में खड़े अपनी बारी की प्रतीक्षा कर रहे हैं किन्तु कुछ लोग (विशेषतः नवयुवक) आकर हेकड़ी दिखाते हुए सबसे आगे जाकर टिकट प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं और यदि टिकट बाबू अन्दर से मना करता है तो उससे उलझ जाते हैं।

(19) अब बोलने की बात चली है तो बोलने के शिष्टाचार के बारे में भी कुछ हो जाये। शास्त्रों ने वाणी या वचन का शिष्टाचार इस प्रकार बताया है-

**“सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात्सत्यमप्रियम्।
प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः॥”**

सत्य बोले, प्रिय बोले। सत्य किन्तु अप्रिय न बोले। प्रिय और असत्य (झूठ) न बोले। यही सनातन धर्म है। कहा भी गया है-“हिये तराजू तौल के तब मुख बाहर आनि।” और,

**“ऐसी बानी बोलिए मन का आपा खोया
औरन को सीतल करै आपहुँ सीतल होया॥”**

मन, वचन और कर्म से किसी को (प्राणिमात्र) को पीड़ा न पहुंचाने का सत्प्रयास ही शिष्टाचार है। शिष्टाचार व्यक्ति के आत्मोल्लास, मानस-पवित्रता और शुभसंकल्प की बाह्य अभिव्यक्ति है। शिष्टाचार सात्त्विक संस्कार के क्रियान्वयन का ही दूसरा नाम है। इससे व्यष्टि ही नहीं, समष्टि का भी कल्याण होता है। शिष्टाचार को मात्र आडम्बर या प्रदर्शन का विषय न बनाकर, उसके साथ अपने को समरस बना लेना चाहिए।



ऊंचे लोग, ऊंची बातें

— विजय किशोर मानव

अगर एक समाज उन बहुत से लोगों की रक्षा नहीं कर सकता जो गरीब हैं तो वह उन लोगों को भी नहीं बचा सकता जो अमीर हैं।

जान एफ कैनेडी की दशकों पहले कहीं यह बात आज भी कम महत्वपूर्ण नहीं हुई है। एक अमीर देश के लोगों की आमदनी एक गरीब देश के लोगों की आमदनी से पैंतीस गुनी है। विश्व बैंक के अध्ययन कहते हैं कि पिछले चार दशकों में अमीर और गरीब के बीच की खाई दो गुनी हो गई है। दुनिया के 120 करोड़ लोग रोजाना एक डालर से भी कम आमदनी में गुजर-बसर करते हैं।

चांद पर जाना, एवरेस्ट जैसी ऊंचाइयों को नाप लेना, डिजिटल और सैटेलाइट तकनीकों से समय और दूरी पर विजय पा लेना या बीमारियों को धता बताने लायक हो जाना या दुनिया के सकल उत्पाद को पचास साल में छह गुना कर लेना या ऐसी ही हजार उपलब्धियां विकास के खाते में दर्ज कर लेना क्या सचमुच विकास की दरकार को पूरा करता है। सामाजिक पूंजी जैसे-भरोसा, पिछड़ों के लिए चिंता, ईमानदारी और न्याय, के क्षेत्र में तो दुनिया के अमीर देश भी गरीब ही हैं। सड़क पर अकड़ कर चलते ट्रकों-बसों का जो रिश्ता डरे-सहमे पैदल और साइकिल सवारों के साथ रहता है, वही बड़ों का छोटों के साथ करीब-करीब हर जगह रहता है। रिश्ता चाहे देशों के बीच हो या लोगों के बीच। यह सूरत कैसी भी हो बदलनी चाहिए। और, इस चाहिए को अपने से ही लागू करना पड़ेगा। इसका कारण है कि परायों के लिए संवेदनहीन होने की हमारी आदत, हमें पता भी नहीं चलता कब, अपनों पर भी लागू हो जाती है। यह हमारे जीवन को असहज और असंतुलित बना जाती है।

एक कथा से आपको जोड़ता हूं। दो भाई खेती करके गुजर-बसर करते थे। एक शादीशुदा और बच्चों वाला था और दूसरा क्वारा। दोनों रोज शाम को अपने-अपने हिस्से का अनाज बांट लेते लेकिन दोनों एक-दूसरे के हित में सोचते। छोटे का सोचना था कि उसके भाई का खर्च परिवार होने के कारण अधिक है इसलिए उसका हिस्सा अधिक होना चाहिए। दूसरी तरफ बड़ा सोचता है कि मेरे तो बीवी-बच्चे हैं जो भविष्य में मेरी सेवा और मदद करेंगे, उसका कौन है ? उसके काम तो धन ही आएगा इसलिए उसके हिस्से में अधिक अनाज जाना चाहिए। दोनों रात को चुपके से अपने हिस्से से

कुछ अनाज दूसरे के यहां रख आते। दोनों को आश्चर्य था कि उनका अनाज कम क्यों नहीं होता। आखिर एक दिन अंधेरे में अनाज की बोरियां एक-दूसरे के यहां ले जाते हुए आपस में टकरा गए। दोनों को सारी बात समझ में आ गई और वे एक-दूसरे के गले लग गए। इन दोनों गरीब भाइयों के बीच की यह अमीरी हमें अभी अर्जित करनी है। इस प्रवृत्ति को भाइयों के बीच ही क्यों पूरे समाज में एक-दूसरे के बीच व्याप्त होना चाहिए।

हमारी परंपरा में यह कोई अनोखी और नई बात नहीं है। 'प्रताप' के प्रधान संपादक गणेश शंकर विद्यार्थी श्री कृष्णदत्त पालीवाल को अपने साथ लाए। कुछ दिन बीते तो एक दिन पालीवाल जी उनसे झगड़ने आ गए। बोले यह तो आपकी मेरे साथ सरासर नाइंसाफी है कि आपका वेतन तीन सौ और आपके अधीनस्थ यानी मेरा साढ़े तीन सौ रुपए। गणेश जी ने शांत भाव से उत्तर दिया। -पालीवाल जी मैं यहां घर में हूं और मेरे खर्चे कम हैं। आप परदेस में हैं, आपको मुझसे ज्यादा धन की आवश्यकता है। इसका पद से कोई लेना-देना नहीं है।'

(20)

लेकिन, हमारे आज के समय में यह एक दुर्लभ उदाहरण है। हमारे भीतर हम दूसरे से ज्यादा पाने की भूख है जो हमें भगाए जा रही है...तेज...और तेज। इसलिए नहीं कि हम बड़े हो सकें बल्कि इसलिए कि दूसरा हर कोई छोटा किया जा सके। यह छोटा दिख कर बड़ा हो जाने के दर्शन के बिल्कुल उलट है। कहते भले ही हों कि व्यापार में, प्रेम में और युद्ध में सब जायज है लेकिन ऐसा है नहीं। जीतने वाले अशोक को भी जनसंहार के बाद शांति के लिए बौद्ध बनना पड़ता है। समृद्धि नापने के पैमाने बदल जाने के बावजूद अब भी कभी-कभी आकलन करते समय मूल्यों की कीमत भी लगती है। अभी हाल ही में चीन और भारत की समृद्धि का आकलन करते समय उन्हीं पैमानों का इस्तेमाल हुआ है कई तरह से उसे ऊंचा दर्जा दिया गया। अच्छा लगा लेकिन हम इन पैमानों को कितना मान दे रहे हैं। इतनी महंगाई की आधी से ज्यादा आबादी जैसे-तैसे पेट भर रही है या आधे पेट सो रही है। हर खास आदमी को विकास दर की चिंता है। सरकार कुछ करने की जगह सफाई दे रही है। दाम, भूख और आत्महत्याओं की जगह हेडली, राणा और कसाब सुर्खियां बटोर ले जाते हैं। और विपक्षी दल, भूख, विवशता और नकारा इंतजामकर्ताओं को मुद्दा बनाना चाहते हैं, बस। इन्हें कौन बताए कि जॉन एफ कैनेडी की बात इनके लिए भी है। उनकी बात एक बार फिर याद दिला देता हूं-अगर एक समाज उन बहुत से लोगों की रक्षा नहीं कर सकता जो गरीब हैं तो वह उन लोगों को भी नहीं बचा सकता जो अमीर हैं।

मुंशीराम से स्वामी बने श्रद्धानन्द

- विनोद बंसल

काशी विश्वनाथ मंदिर के कपाट सिर्फ रीवा की रानी हेतु खोल कर, साधारण जनता के लिए बन्द किए जाने तथा एक कैथोलिक पादरी के व्यभिचार का दृश्य देख मुंशीराम का धर्म से विश्वास उठ गया और वे बुरी संगत में पड़ गए। किन्तु, स्वामी दयानन्द सरस्वती के साथ बरेली में हुए सत्संग ने उनके जीवन को ही बदल दिया जिसे उन्होंने सारे संसार में वितरित किया।

स्वामी श्रद्धानन्द उन महापुरुषों में से एक थे जिनका जन्म ऊंचे कुल में होने के बावजूद प्रारंभिक जीवन बुरी लतों के कारण बहुत ही निकृष्ट किस्म का था। मुंशीराम से स्वामी श्रद्धानन्द तक का सफर पूरे विश्व के लिए प्रेरणादायी है। स्वामी दयानन्द सरस्वती से हुई एक भेंट तथा पत्नी के पतिव्रत धर्म तथा निश्चल, निष्कपट, प्रेम व सेवा भाव ने उनके जीवन को क्या से क्या बना दिया?

समाज सुधारक के रूप में उनके जीवन का अवलोकन करें तो पाते हैं कि उन्होंने प्रबल विरोध के बावजूद स्त्री शिक्षा के लिए अग्रणी भूमिका निभाई। स्वयं की बेटी अमृतकला को जब उन्होंने 'ईसा-ईसा बोल तेरा क्या लगेगा मोल' गाते सुना तो उनके कान खड़े हो गए। इस ओर पहल करते हुए घर-घर जा कर चंदा इकट्ठा कर गुरुकुल कांगड़ी विश्व विद्यालय की स्थापना हरिद्वार में कर अपने बेटे हरीशचंद्र और इंद्र को सबसे पहले भर्ती करवाया।

स्वामीजी का विचार था कि जिस समाज और देश में शिक्षक स्वयं चरित्रवान नहीं होते उसकी दशा अच्छी हो ही नहीं सकती। उनका कहना था कि हमारे यहां टीचर हैं, प्रोफेसर हैं, प्रिंसीपल हैं, उस्ताद हैं, मौलवी हैं पर आचार्य नहीं हैं। आचार्य अर्थात् आचारवान व्यक्ति की महती आवश्यकता है। चरित्रवान व्यक्तियों के अभाव में महान से महान व धनवान से धनवान राष्ट्र भी समाप्त हो जाते हैं।

जाति-पाति व ऊंच-नीच के भेदभाव को मिटाकर समग्र हिंदू समाज के कल्याण के लिए उन्होंने अनेक कार्य किए। प्रबल सामाजिक विरोधों के बावजूद अपनी बेटी अमृतकला, बेटे हरिश्चंद्र व इंद्र का विवाह जाति-पाति के समस्त बंधनों को तोड़कर कराया। उनका विचार था कि छूआछूत को लेकर इस देश में अनेक जटिलताओं ने जन्म लिया है तथा वैदिक वर्ण व्यवस्था के द्वारा ही इसका अंत कर

अछूतोद्धार संभव है।

वे हिन्दी को राष्ट्रभाषा और देवनागरी को राष्ट्रलिपि के रूप में अपनाने के पक्षधर थे। 'सतधर्म' प्रचारक नामक पत्र उन दिनों उर्दू में छपता था। एक दिन अचानक ग्राहकों के पास जब यह पत्र हिंदी में पहुंचा तो सभी दंग रह गए क्योंकि उन दिनों उर्दू का ही चलन था।

त्याग व अटूट संकल्प के धनी स्वामी श्रद्धानन्द ने 1868 में यह घोषणा की कि जब तक गुरुकुल के लिए तीस हजार रुपये इकट्ठे नहीं हो जाते तब तक वे घर में पैर नहीं रखेंगे। इसके बाद उन्होंने भिक्षा की झोली डाल कर न सिर्फ घर-घर घूम चालीस हजार रुपये इकट्ठे किए बल्कि वहीं डेरा डाल अपना पूरा पुस्तकालय, प्रिंटिंग प्रेस तथा जालंधर स्थित कोठी भी गुरुकुल पर न्यौछावर कर दी।

उनका अटूट प्रेम व सेवा भाव अविस्मरणीय है। गुरुकुल में एक ब्रह्मचारी के रुग्ण होने पर जब उसने उल्टी की इच्छा जताई तब स्वामी जी द्वारा स्वयं की हथेली में उल्टियों को लेते देख सभी हतप्रभ रह गए। ऐसी सेवा और सहानुभूति और कहाँ मिलेगी?

(21)

स्वामी श्रद्धानन्द का विचार था कि अज्ञान, स्वार्थ व प्रलोभन के कारण धर्मांतरण कर बिछुड़े स्वजनों की शुद्धि करना देश को मजबूत करने के लिये परम आवश्यक है। इसीलिए, स्वामी जी ने 'भारतीय हिंदू शुद्धि सभा' की स्थापना कर दो लाख से अधिक मलकानों को शुद्ध किया। एक बार शुद्धि सभा के प्रधान को उन्होंने पत्र लिख कर कहा कि अब तो यही इच्छा है कि दूसरा शरीर धारण कर शुद्धि के अधूरे काम को पूरा करूं।

वे निराले वीर थे। लौह पुरुष सरदार बल्लभ भाई पटेल ने कहा था "स्वामी श्रद्धानन्द की याद आते ही 1911 का दृश्य आंखों के आगे आ जाता है। सिपाही फायर करने की तैयारी में हैं। स्वामी जी छाती खोलकर आगे आते हैं और कहते हैं-लो, चलाओ गोलियां। इस वीरता पर कौन मुग्ध नहीं होगा?" महात्मा गांधी के अनुसार "वे वीर सैनिक थे। वीर सैनिक रोग शैया पर नहीं, परन्तु रणांगण में मरना पसंद करते हैं। वे वीर के समान जीये तथा वीर के समान मरे।" महात्मा गांधी से ही उनको महात्मा मुंशीराम का नाम मिला।

राष्ट्रधर्म को बढ़ाने के लिए वे चाहते थे कि प्रत्येक नगर में एक हिंदू-राष्ट्र मंदिर होना चाहिए जिसमें पच्चीस हजार व्यक्ति एक साथ बैठ सकें और वहां वेद, उपनिषद, गीता, रामायण और महाभारत आदि की कथा हुआ करे। मंदिर में अखाड़े भी हों जहां व्यायाम के द्वारा शारीरिक शक्ति भी बढ़ाई जाए। प्रत्येक हिन्दू राष्ट्र मंदिर

पर गायत्री मंत्र भी अंकित हो।

देश की अनेक समस्याओं तथा हिंदोद्धार हेतु उनकी एक पुस्तक 'हिंदू सोल्लिडेरिटी-सेवियर ऑफ डाइंग रेस' अर्थात् 'हिंदू संगठन मरणोन्मुख जाति का रक्षक' आज भी हमारा मार्गदर्शन कर रही है। राजनीतिज्ञों के बारे में स्वामी जी का मत था कि भारत को सेवकों की आवश्यकता है लीडरों की नहीं। श्रीराम का कार्य इसीलिए सफल हुआ क्योंकि उन्हें हनुमान जैसा सेवक मिला। स्वामी दयानन्द का कार्य अधूरा पड़ा है जो तभी पूरा होगा जब दयानंद रूपी राम को भी हनुमान जैसे सेवक मिलेंगे। वे सच्चे अर्थों में स्वामी दयानंद के हनुमान थे जो राष्ट्र की सेवा के लिए तिल-तिल कर जले।

□

सम्पर्क F सहयोग F संस्कार F सेवा F समर्पण

पढ़िये और पढ़ायें तथा भेंट करें

J \DQ#SUDEKD
+TXDUWHUO\ ,

ज्ञान प्रभा

त्रैमासिक ज्ञान प्रभा के
आजीवन सदस्य बनें।

सहयोग राशि वार्षिक
रु० 433/-
आजीवन रु० 4833/-

त्रैमासिक

56

आगामी अंक

क्या आधुनिकीकरण के लिए
पाश्चात्यीकरण आवश्यक है?

अहिल्याबाई होलकर : भारतीय इतिहास का गौरवपूर्ण चरित्र

- ऐश्वर्य द्विवेदी

(22)

भारतवर्ष की महान आर्य-भूमि ने समय-समय पर न केवल पुरुषों, वरन् अनेक ऐसी आदर्श और गौरवपूर्ण चरित्रवाली नारियों को भी जन्म दिया है जिनकी मिसाल इतिहास में दूसरी नहीं मिलती। मध्यकालीन भारत के इतिहास में 'देवी' अहिल्याबाई होलकर एक ऐसा ही नाम है। होलकर राज्य की इस महारानी की लोकप्रियता और सुशासन का अंदाजा इसी से लगाया जा सकता है कि उनके उदार चरित्र और लोक कल्याणकारी कार्यों के कारण उनकी प्रजा उन्हें 'लोकमाता' कहती थी। मध्ययुगीन भारत जब छोटे-छोटे राज्यों के आपसी वैमनस्य और अंतर्कलह से जूझ रहा था और शासन एक दूसरे के राज्य-हड़पने की कुटिल नीति की भीतर घात चालें चल रहे थे, ऐसे में अहिल्याबाई ने बिना किसी राज्य पर आक्रमण किये और बिना अपने स्वयं के राज्य पर आक्रमण हुए 'सबका भला-अपना भला' के सिद्धान्त के आधार पर सुशासन का आदर्श प्रस्तुत किया।

देवी अहिल्याबाई होलकर का जन्म सन् 1725 ई. में महाराष्ट्र के औरंगाबाद जिले के एक छोटे से चौंदी नामक ग्राम में हुआ। उनके पिता मानकोजी शिंदे धर्मावलम्बी, कर्तव्यपरायण व्यक्ति थे, जिसका प्रभाव बाल्यकाल में ही अहिल्या के जीवन पर पड़ा। अहिल्या ने घर पर ही शिक्षा-दीक्षा ग्रहण की। धार्मिक ग्रंथों को पढ़ना एवं सत्संग करना बचपन से ही उनकी आदत में शुमार हो गया। चौंदी ग्राम के भगवान शिव के मंदिर में नित्य पूजा-पाठ करना, संध्या करना उनकी दिनचर्या में सम्मिलित था। बड़े होने पर अहिल्या का विवाह सूबेदार मल्हार राव होलकर के इकलौते पुत्र खंडे राव के साथ हुआ। सूबेदार मल्हार राव होलकर पेशवा वाजीराव के विश्वस्त सेनापति थे। इन्होंने ही होलकर राज्य की स्थापना की थी। ससुराल में अपनी कर्तव्यनिष्ठा और विनम्र व्यवहार से अहिल्या ने सबका दिल जीत लिया। अहिल्या के पति युवराज खंडेराव इकलौते पुत्र होने के नाते राज-काज में कम रुचि लेते थे फलतः राज-काज का अधिकांश कार्य स्वयं अहिल्या बाई ही करती थीं। 24 मार्च 1774 को

सूरजमल के खिलाफ युद्ध का नेतृत्व करते हुए जब खंडेराव शहीद हो गये तो अहिल्या का जीवन दुख से भर उठा, किन्तु उन्होंने 'सती' न होने का संकल्प लिया। राजसी वस्त्राभूषणों को त्याग कर, श्वेत वस्त्र धारण कर उन्होंने मनुष्य-सेवा का व्रत ले लिया। उन्होंने सती न होकर अदम्य निडरता और साहस का परिचय दिया। 73 वर्ष की अवस्था में 20 मई 1766 ई. को अपने इकलौते पुत्र की मृत्यु शोक में मल्हारराव भी चल बसे। फलतः राज्य की देख-रेख का सारा उत्तरदायित्व देवी अहिल्या के कंधों पर आ पड़ा।

अहिल्या के पति खांडे राव होलकर अपने पीछे एक पुत्र मालेराव और एक पुत्री मुक्ताबाई को छोड़ गये थे, जिनकी शिक्षा-दीक्षा का उचित प्रबंधन भी अहिल्याबाई ने ही किया। मालेराव अपने पिता या पितामह की भांति वीर योद्धा नहीं था, फिर भी राजकुल की परम्परानुसार 23 अगस्त 1776 को मालेराव का राजतिलक किया गया। किन्तु प्रजा उसके शासन से संतुष्ट न थी। दायित्व संभालते ही मालेराव बीमार पड़ गया और शीत ज्वर के कारण 2 वर्ष में ही उसकी मृत्यु हो गयी। इस प्रकार इकलौते पुत्र की मृत्यु ने रानी को अंदर-ही-अंदर तोड़कर रख दिया। पति, ससुर और पुत्र की मृत्यु की पश्चात् अहिल्या ने राज-काज का सारा जिम्मा अपने कंधों पर ले लिया।

अहिल्या को अबला मात्र समझकर आस-पास के कुछ लंपट राजाओं ने इंदौर पर चढ़ाई कर उनके राज्य को जब हड़पना चाहा तो अहिल्या ने बड़ी सूझ-बूझ और पूरे साहस के साथ कूटनीति से राज्य पर आये संकट को बचा लिया और कुचक्री अपनी चाल में सफल न हो सके। देवी अहिल्या ने अपने शासन काल में बहुत कम युद्ध किये, अपनी राज-सेना का उपयोग दूसरों के राज्य को हड़पने के बजाय अपने राज्य की रक्षा में ही अधिक किया। चंद्रावत के युद्ध में स्वयं सेना का संचालन कर अहिल्या ने अपनी वीरता से शत्रुओं के दांत खट्टे कर दिये। प्रजा में उनकी विजय-कीर्ति दूर-दूर तक फैल गयी और इस प्रकार शत्रुओं को उन्होंने बता दिया कि वे अबला नहीं, सिंहनी हैं। अतः कोई कमजोर समझने की भूल न करे। राज्य में चोर और डाकुओं का दमन कर उन्होंने सुख-शांति और समृद्धि कायम की। यद्यपि वे एक विशाल होलकर राज्य की स्वामिनी थीं, किन्तु दर्प और अभिमान उन्हें छू तक नहीं सका। वे नित्य प्रति पूजा-पाठ और दान-पुण्य किया करती थीं। प्रजा को कानून का संरक्षण और उचित न्याय मिल सके, राज्य की हर संकट से रक्षा हो सके इन सबकी ओर उन्होंने विशेष ध्यान दिया। वर्षा कम होने या सूखा पड़ने पर वे किसानों को करों में छूट देती थीं। राज्य में व्यापार को बढ़ावा देने के लिए भी उन्होंने अनेक महत्वपूर्ण कार्य किये और अपने को एक कुशल शासिका सिद्ध किया।

देवी अहिल्या ने अपने शासनकाल में समाज के सभी वर्ग के लोगों को समान न्याय और पूर्ण संरक्षण प्रदान किया। विधवा महिलाओं के प्रति उनके मन में गहरी सहानुभूति थी। उन्होंने नियम बनाया कि वे चाहें तो किसी के भी पुत्र को दत्तक या गोद ले सकती हैं। धार्मिक प्रवृत्ति के कारण उन्होंने अपने शासन-काल में लोक-संस्कृति एवं लोक-कलाओं को भी संरक्षण प्रदान किया। साहित्य, वेदांग, व्याकरण, ज्योतिष और धर्मशास्त्र के विद्वानों को उन्होंने न केवल सम्मानित किया अपितु संरक्षण भी प्रदान किया।

अपने जीवन-काल में भारतवर्ष के समस्त प्रसिद्ध तीर्थस्थलों का भ्रमण कर रानी अहिल्याबाई ने सनातन धर्म की प्रतिष्ठा के लिए कई महत्वपूर्ण कार्य किये। मंदिरों, घाटों, कुंओं, बाबड़ियों और धर्मशालाओं का निर्माण इनमें सबसे महत्वपूर्ण कार्य था, जिसे उन्होंने पूरी लगन और निष्ठा के साथ करवाया। काशी से लेकर कलकत्ता तक उन्होंने न केवल मार्ग की मरम्मत कराई वरन् यवन और म्लेच्छ आक्रांताओं द्वारा नष्ट-भ्रष्ट किये गये मंदिरों और मूर्तियों का जीर्णोद्धार भी कराया। उत्तर भारत में बद्रीनाथ के श्री केदारेश्वर मंदिर, देवप्रयाग में धर्मशाला, अयोध्या में श्रीराम मंदिर, भैरव मंदिर, नागेश्वर मंदिर, सरयू घाट की धर्मशालाओं से लेकर स्वयं काशी विश्वनाथ मंदिर का जीर्णोद्धार भी कराया। इसी प्रकार ऋषीकेश, मथुरा, वृन्दावन, केदारनाथ, रामेश्वरम्, कर्नाटक, जगन्नाथपुरी, उज्जैन, सोमनाथ, बालाजी मंदिर, अमर कंटक आदि अनेक स्थलों पर मंदिरों, कुंडों, जलाशयों, पुलों धर्मशालाओं, मार्गों का निर्माण एवं पुराने जर्जन भवनों की मरम्मत का महान लोकोपकारी कार्य देवी अहिल्या ने किया। इस प्रकार कुशल शासक, न्यायप्रिय, धर्मप्रिय, प्रजाप्रिय 'लोकमाता' अहिल्या की अनेक कल्याणकारी कार्य करते हुए 13 अगस्त 1795 को 29 वर्ष के लम्बे शासनकाल में सुशासन का आदर्श स्थापित करने के बाद इहलीला समाप्त हुई।

देवी अहिल्या का व्यक्तित्व एवं कृतित्व भारतीय इतिहास, विशेष रूप से नारी जाति के इतिहास का एक ऐसा गौरवपूर्ण और अमिट अध्याय है, जिसका पावन स्मरण न केवल जातीयता के गौरव का बोध कराता है अपितु महान अद्वितीय प्रेरणा भी देता है। ऐसे महान, वीर और पवित्र धर्माचरण वाली तथा उच्चादर्श और त्याग का अनूठा उदाहरण प्रस्तुत करने वाली नारी चरित्र का अन्य दूसरा उदाहरण मिलना विरल है।

□

(23)

विज्ञापन का अंधा कुँआ

- डॉ. ज्योति सिंह

वैश्विक जगत में बाजारवाद का दम-खम मीडिया (संचार माध्यम) के जोर आजमाइश के बल पर खड़ा है। 'ग्लोबल विलेज' की संकल्पना के जन्मदाता, मार्शल मैक्लुहान ने अपनी पुस्तक 'अण्डरस्टेण्डिंग मीडिया' में बहुत पहले ही यह सिद्धान्त स्थापित कर दिया था कि-'संचार माध्यम हमारे शरीर का ही विस्तार है, जिसने हमारे सोच, रहन-सहन, जीवन शैली, विचार शैली सब कुछ को परिवर्तित कर दिया है। मीडिया का आधारस्तम्भ विज्ञापन है। मीडिया को विस्तृत आयाम विज्ञापन ने ही दिया है। मीडिया अब बाकी सेवा के क्षेत्र (स्वास्थ्य, शिक्षा) की तरह सेवा का नहीं, अपितु विशुद्ध व्यवसाय का क्षेत्र बन चुका है। मीडिया को व्यवसाय विज्ञापन से ही मिलता है। फलतः विज्ञापन और मीडिया का तालमेल कुछ इस प्रकार हो गया है कि उपभोक्ता को इसका आभास ही नहीं हो पाता है कि कहां विज्ञापन है और कहां मीडिया जनता को सूचना से संचारित कर रहे हैं। कहीं विज्ञापन संदेश का शकल ले लेता है और कहीं संदेश भी विज्ञापन का। सब कुछ बाजार का, बाजार के लिए, बाजार में परोसा जा रहा है।

विविध शोध निष्कर्ष बताते हैं कि सूचना माध्यम द्वारा प्रसारित शब्द हम सबके दिमाग को प्रभावित करते हैं। हम उनके बारे में पढ़ने-सुनते समय भले ही सोचते हों, किन्तु ये शब्द हमारे अवचेतन में पैठ बना लेते हैं। एक झूठ सौ बार दोहराने से सच लगने लगता है, उसी प्रकार जब उत्पाद कंपनी अपनी गुणवत्ता को ग्लैमर की चाशनी में लपेटकर बार-बार उपभोक्ता के समक्ष लाती है, तो उपभोक्ता को प्रभावित किये बिना नहीं रहती। अर्थशास्त्री ग्रेशम ने कहा था कि-'खोटा सिक्का, अच्छे सिक्के को चलन से बाहर कर देता है' उसी प्रकार विज्ञापन के चकाचौंध में अच्छे उत्पाद बाजार से गायब हो जाते हैं और रह जाता है विज्ञापन और उसकी दुनिया में प्रचारित उत्पाद। कार्ल मार्क्स की पंक्ति-"मुनाफाखोरी काले जादू की तरह काम करती है; मुनाफाखोर धीरे-धीरे आम जनता से कटता चला जाता है"।

कारपोरेट जगत, मीडिया जगत एवं विज्ञापन जगत तीनों मिलकर एक प्रोडक्ट की भांति काम कर रहे हैं और निःसहाय जनता उस प्रोडक्ट की अंधी उपभोक्ता मात्र रह गयी है। क्या राजनीति, क्या खेल, क्या समाचार, क्या शिक्षा, क्या धर्म, क्या संदेश, क्या उत्पाद, मीडिया द्वारा सभी का कॉकटेल बना दिया गया है। मीडिया, विज्ञापन,

ग्लैमर बाजार के मध्य आई.पी.एल. (क्रिकेट का खेल) गुम हो गया है। शेष मुनाफाखोरी, कमीशनखोरी, रिश्वतखोरी तथा करोड़ों-अरबों के विज्ञापन के खेल रह गये हैं। मीडिया की जय, विज्ञापन की जय, बाजार की जय, पराजय किसकी? खेल की? खेल की भावना की? आम जनता की भावना की? लोकतंत्र का चौथा स्तम्भ मीडिया, बाजार और मुनाफे के धामे में ऐसा गुंथ गया है कि दोनों एक-दूसरे को मान्यता देते हुए स्वयं को बनाये रखने के लिये हावी हैं। आम सरोकार से हटकर मीडिया बिकाऊ संदेश प्रसारित कर रही है। आम सरोकार से जुड़े समाचारों से मीडिया का सरोकार कम होता जा रहा है। विज्ञापन और समाचार में फर्क खत्म होता जा रहा है।

(24)

विज्ञापन ने हमारी जीवन शैली बदल डाली है। हम अपनी संस्कृति, सभ्यता, धरोहर से पृथक् होते जा रहे हैं तथा एक आयातित, थोपी गयी जीवन शैली को अपनाकर आत्मगुंथ हो रहे हैं और स्वयं को विकसित की श्रेणी में खड़ा पा रहे हैं। बच्चों के अबोध मन पर विज्ञापन पूरी तरह छा गया है। वह अपने बाजार के फैलाव के लिये बच्चों को पंगु बना रहा है। 'कम्प्लान ब्वाय', 'बुस्ट इज सिंक्रेट ऑफ माई एनर्जी', 'पेप्सोडेन्ट किया', 'डाबर ग्लुकोविटा दे गजब की स्फूर्ति...वगैरह-वगैरह इस प्रकार प्रचारित किया जाता है कि बच्चा सोच बैठता है कि कम्प्लान पियेंगे तो सचिन बन जायेंगे, बुस्ट पियेंगे तो धोनी, स्टार खिलाड़ी और बालीवुड स्टार्स के द्वारा विज्ञापन बच्चों के मन में भ्रम का बीच बचपन से ही अंकुरित कर देते हैं जो अपरिपक्व युवा मन पर परिपक्व बनकर हावी रहते हैं। बाजार बच्चों की उपयोगिता एवं आवश्यकता को तय करता है। विज्ञापन विशेषज्ञ अथवा प्रबन्धक गुर सिखाते हैं कि कैसे बच्चों के बाजार का एक्सप्लायटेशन करना चाहिये। यदि पांच साल के बच्चों को आपकी टूथपेस्ट पसन्द आयी तो पच्चीसों वर्ष तक आपका उत्पाद बिकता रहेगा, यह गारण्टेड है।

मीडिया लोकतंत्र का चौथा स्तम्भ है जिसे शासक एवं शासित के मध्य संचार संवाहक माना जाता है किन्तु वैश्विक युग में यह कारपोरेट, बाजार तथा उपभोक्ता के मध्य का संवाहक बन चुका है। कारपोरेट के नियंत्रण में बाजार तथा बाजार के नियंत्रण में मीडिया तीनों की गुटबन्दी के मध्य उपभोक्ता (आम जनता) फंसा है। श्रमशक्ति, क्रय शक्ति, बाजार के अधीनस्थ है। विज्ञान का आकर्षक एवं लोकलुभावन चादर ओढ़े सज-धज कर कारपोरेटी माल वैश्विक मण्डी में खड़ा है। मीडिया उसे घर-घर, जन-जन तक परोस रही है। भूमण्डलीकरण एक विश्व व्यापार है। अर्थात् पूरा विश्व एक ग्राम नहीं, अपितु बाजार है, जहां वस्तु से लेकर श्रम, मानव मूल्य, समाचार सब कुछ विक्रय हेतु विज्ञापित है। संचार प्रचार (विज्ञापन) का सशक्त साधन बन चुका है, सामाजिक सरोकार पीछे छूट गये हैं। □

खाकी वर्दी का सच

- आर० के० श्रीवास्तव

आज पुलिस विभाग भ्रष्टाचार, उत्पीड़न, ज्यादती, धौंस एवं शोषण का पर्याय बन गया है। किन्तु कम ही लोगों का ध्यान पुलिस की कठिनाइयों, परेशानियों एवं मजबूरियों की ओर जाता है। पुलिस वालों को भी हमदर्दी की आवश्यकता है एवं उनके संसाधनों में भी सुधार अपेक्षित है।

खाकी वर्दी का रोब ज्यादातर लोगों ने देखा है एवं कभी-कभी झेला भी है लेकिन उसे पहनने वाले की कुंठा तथा कांटेदार पीड़ा के विषय में बहुत कम लोग जानते हैं। एक आम धारणा है कि पुलिस मामले की रिपोर्ट दर्ज नहीं करती या दर्ज करती है तो ठीक प्रकार से जांच नहीं करती। यह भी कहा जाता है कि सबसे अधिक भ्रष्टाचार पुलिस विभाग में है। आज लोग सड़क दुर्घटना में घायल व्यक्ति को अस्पताल ले जाने में घबड़ाते हैं क्योंकि उन्हें डर है कि पुलिस की जानकारी में आने पर उन्हें थाने या कोर्ट के चक्कर लगाने पड़ेंगे। किसी भी सार्वजनिक स्थान पर पुलिस का जिक्र आते ही ज्यादातर लोग पुलिस की आलोचना ही करते हैं। सही स्थिति जानने के लिए पुलिस विभाग के इतिहास एवं उसकी कार्यप्रणाली तथा परिस्थितियों पर दृष्टिपात करना आवश्यक होगा।

1857 के स्वतंत्रता आन्दोलन ने भारत में ब्रिटिश राज्य की नींव हिला दी। इसके बाद अंग्रेजों ने महसूस किया कि साम्राज्यवाद को बचाने के लिए ऐसा पुलिस तंत्र होना चाहिए जो उनके ही हित में कार्य कर सके। आज से लगभग 150 वर्ष पूर्व पुलिस अधिनियम 1861 में लागू किया गया जो राजनीतिक रूप से ब्रिटिश सरकार के लिए उपयोगी था। स्वतंत्रता प्राप्ति के समय भारत सरकार के लिए यह आवश्यक था कि पुलिस का पुनर्गठन करके उसे जन साधारण के प्रति जवाबदेह बनाये। दुर्भाग्यवश ऐसा नहीं हो सका। समय बीतने के साथ सरकारें बदलती रहीं किन्तु उन्हें अपने राजनीतिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए पुलिस का दुरुपयोग करने में अधिक रुचि रही। सुधार की ओर ध्यान देना किसी ने आवश्यक नहीं समझा।

यही पुलिस विभाग भ्रष्टाचार, उत्पीड़न, ज्यादती, धौंस व शोषण का पर्याय बन गया है। पुलिस का कार्य कानून व्यवस्था बनाये रखना व अपराधी को पकड़ना है। किसी को यह नहीं मालूम कि पुलिस की कठिनाइयों, परेशानियों व मजबूरियां क्या

हैं। यदि इनकी चर्चा की जाये तो ज्ञात होगा कि वर्दी को भी हमदर्दी की जरूरत है। वे सीमित व अपर्याप्त संसाधनों से कैसे काम करते हैं इसका खुलासा वे नहीं कर सकते। नाम न बताने की शर्त पर तथ्यों की जो जानकारी पुलिस कर्मियों ने दी उसके कुछ उदाहरण ही काफी होंगे।

आगरे में एक बच्चे का अपहरण हो गया। ज्ञात हुआ कि अपहरणकर्ता बच्चे को लेकर राजस्थान गये हैं। पता लगाने के लिए कई टीमें भेजी गईं। सभी टीमें निजी वाहनों से राजस्थान के शहरों का चक्कर लगाती रहीं। बच्चे को बचाने में सफलता मिली किन्तु इस सारे आपरेशन में 50 हजार खर्च हो गये। गाड़ियों में डीजल भरवाने से लेकर टीम के खाने आदि का प्रबन्ध थानेदारों को अपने पास से करना पड़ा। ऐसे कामों में जिसे अपने जेब से खर्च करना होगा उसे उसकी भरपाई तो कहीं न कहीं से करनी होगी।

(25)

नेपाल सीमा पर स्थित एक थाने के क्षेत्र में एक बच्चे की हत्या हो गई। हत्यारा भाग कर नेपाल चला गया। मामले ने राजनीतिक रंग पकड़ लिया और नेताओं का दबाव एस.पी. पड़ा। उसने थाने के इंस्पेक्टर को चेतावनी दी कि हत्यारों को पकड़ो अन्यथा सस्पेन्ड होने के लिए तैयार हो जाओ। उसने नेपाल के कुछ लोगों से सम्पर्क करके अपराधी को भारत सीमा में लाने की व्यवस्था कराई। इसमें लगभग 70 हजार रुपये खर्च हो गये जो इंस्पेक्टर को अपने पास से देने पड़े। सरकार की ओर से एक पैसा भी नहीं मिला। यह खर्च वह अपने वेतन से पूरा न नहीं कर सकता। उसे अपनी नौकरी बचानी थी तो खर्च किया व किसी प्रकार उसे पूरा करेगा।

पुलिस का एक महत्वपूर्ण कार्य गश्त लगाने का है जिससे अपराध पर रोक लग सके। थाने में विभाग का सबसे छोटा कर्मचारी सिपाही होता है। उसे आज भी केवल साइकिल एलाउंस मिलता है। तेज रफ्तार वाली गाड़ियों का उपयोग करने वाले अपराधियों को साइकिल से पकड़ना सम्भव नहीं है। इसके लिए वे प्राइवेट वाहनों का प्रबन्ध करते हैं। थाने में दी गई मोटरसाइकिलों को जो तेल मिलता है वह काफी नहीं होता। पुलिस को अपराधों की जानकारी के लिए मुखबिरों का प्रबंध भी अपने खर्च से करना होता है क्योंकि इसके लिए सरकारी फण्ड नहीं होता।

जब किसी मुलाजिम को पकड़कर थाने लाया जाता है तो उसे 24 घंटे में न्यायालय में पेश करना होता है। इस बीच उसके खाने की व्यवस्था करनी पड़ती है। इसके लिए सरकार से प्रति खुराक पांच रुपये मिलते हैं। इतने में किसी का पेट नहीं भर सकता। अतः पुलिस या तो अपने जेब से खर्च करती है या धौंस देकर किसी ढाबे से खाना मंगवाती है। सरकार आशा करती है कि सिपाही किसी भी घटना की खबर तुरन्त उच्च अधिकारियों तक पहुंचाये। किन्तु आज के युग में भी उन्हें मोबाइल

रखने के लिए बजट का प्राविधान नहीं है।

इस प्रकार संसाधनों के अभाव में जब पुलिस कर्मी अपनी जेब से खर्च करता है तो स्वाभाविक रूप से उसकी प्रतिपूर्ति वह गलत तरीके से करता है। फिर एक बार शुरू करने पर यह जरूरी नहीं कि वह वसूली को उस राशि तक सीमित रखें जो उसने खर्च की है। इसके बाद वह अपने लिए भी वसूली करता है। परिणाम स्वरूप भ्रष्टाचार का दायरा बढ़ता ही जाता है।

पुलिस कर्मियों का वेतन भी दूसरे सरकारी कर्मचारियों से कम है। तीसरे वेतन आयोग में प्राइमरी स्कूल के अध्यापक का वेतन 365.00 व कांस्टेबल का 360 रुपये अर्थात् पांच रुपया कम था। यह अन्तर परवर्ती आयोगों के समय बढ़ता गया व छठे वेतन आयोग के बाद सिपाही अध्यापक से 4100 रुपये पीछे हो गया। यह हाल तब है जब सिपाही 24 घंटे ड्यूटी पर होता है व अध्यापक केवल 10 बजे से 4 बजे तक काम करके छुट्टी पा जाता है।

यह तो हुआ भ्रष्टाचार बढ़ने का मुख्य कारण। अब देखना है कि राजनीतिक दबाव ने पुलिस की कार्य शैली को कैसे प्रभावित किया है। इसके लिए भी कुछ उदाहरण देखना आवश्यक होगा। उत्तर प्रदेश में कार्यरत शैलेन्द्र सिंह को एक बार खबर मिली कि दो लोग अवैध रूप से 10 लाख 50 हजार रुपये लेकर जा रहे हैं। पछताछ के दौरान उन्होंने माना कि यह रुपये बेसिक शिक्षा अधिकारी की ओर से ले जाये जा रहे थे जिसे शिक्षा मंत्री की ओर से पार्टी फंड में जमा करना था। बेसिक शिक्षा अधिकारी ने कहा कि आप गलत जगह पर हाथ डाल रहे हैं। बात तुरन्त मुख्यालय पहुंची व परिणाम यह हुआ कि उनके इंस्पेक्टर को बहुत डांट पड़ी। शैलेन्द्र सिंह का एक सप्ताह में पांच बार ट्रान्सफर किया गया। बाद में परेशान होकर 2004 में उन्होंने डी वाई एस पी के पद से त्यागपत्र दे दिया।

एक अन्य मामले में लखनऊ के थाने में तैनात कांस्टेबल रमेश ने एक पॉश कालोनी में गश्त करते हुए देखा कि चार लड़के एक कार में बैठे शराब पी रहे थे। मना करने पर कार से एक लड़का उतरा व रमेश को तीन चार झापड़ रसीद कर दिये। रमेश ने तुरन्त फोन करके फोर्स भेजने को कहा। कार्यवाही करने के स्थान पर एस ओ ने कहा कि वे लड़कों को जानते हैं। उन्होंने रमेश को भविष्य में ऐसी हरकत न करने की चेतावनी दी। ऐसी स्थिति में कोई अपराध रोकने की कार्यवाही कैसे करेगा।

2001 में उत्तर प्रदेश के मिर्जापुर में सब इंस्पेक्टर के पद पर कार्य करते हुए रतन यादव ने सूचना मिलने पर ए के 47 से लैंस खूंखार गैंगेस्टर प्रीतम सिंह का पीछा किया। सीधी मुठभेड़ में प्रीतमसिंह मारा गया व रतन यादव गम्भीर रूप से घायल हो गया। पांच दिन तक कोमा में रहने के बाद उसे छः महिने अस्पताल में में रहना पड़ा।

इस बहादुरी के लिए रतन को राष्ट्रपति से पदक मिला व उसका प्रमोशन कर दिया गया। बाद में रतन यादव ने जानवरों की तस्करी करते हुए कुछ वाहनों को जब्त किया था। ये वाहन एक विधायक के थे। विधायक ने रतन को गंभीर नतीजे भुगतने की धमकी दी। उसने आई जी को पत्र लिखा कि इंस्पेक्टर यादव उनके काम में बाधा डाल रहे हैं अतः उन्हें सस्पेंड किया जाये। डी आई जी ने अगले ही रतन को निलम्बित कर दिया। रतन ने हाईकोर्ट में अपील की। तीन साल तक केस लड़ने के बाद उन्हें पुनः इंस्पेक्टर के पद पर तैनाती मिली। रतन को अभी भी जान का खतरा है किन्तु उनकी सुरक्षा में तैनात गनर वापस ले लिया गया है। ऐसे मामले को देखकर कर्तव्य निष्ठ पुलिसकर्मी अपराध की ओर से आंख बन्द कर लेने को मजबूर हो जाते हैं।

प्रश्न यह है कि क्या पुलिस विभाग को इस स्थिति से निकाला जा सकता है। असम्भव कुछ भी नहीं है। आवश्यकता है केवल नेक इरादे व दृढ़ निश्चय की। 150 वर्ष पुराने प्राविधानों वाले पुलिस एक्ट में आमूल चूल परिवर्तन करना होगा। इस सम्बन्ध में अभी तक की गई कार्यवाही दिखावटी ही रही है। 1977 में सरकार ने नेशनल पुलिस कमीशन की नियुक्ति की जिसने 1979-81 के बीच आठ रिपोर्टें प्रस्तुत कीं। 1983 में ये रिपोर्टें उचित कार्यवाही के लिए राज्य सरकारों को इस टिप्पणी के साथ भेजी गई कि कमीशन ने कुछ संस्तुतियां करते समय राजनीतिक व्यवस्था एवं पुलिस कार्य प्रणाली की अनावश्यक आलोचना की है। अतः उन पर ध्यान न दिया जाय। स्पष्ट रूप से राज्य सरकारों को रिपोर्टों को ढंढे बस्ते में डालने का बहाना मिल गया।

पुलिस सुधार के सम्बन्ध में 1996 में सर्वोच्च न्यायालय में एक जनहित याचिका दायर की गई। यह याचिका न्यायालय के समक्ष विचाराधीन थी। इस बीच पुलिस सुधार पर विचार करने के लिए सरकार ने 1998 में रिबैरियो कमेटी, 2000 में पद्मनाभइया कमेटी तथा 2002 में मल्लिमथ कमेटी नियुक्त की। तीनों कमेटियों ने मोटे तौर पर पुलिस सुधार की तुरन्त आवश्यकता पर जोर दिया। किन्तु प्रस्तावित सुधारों को कभी लागू नहीं किया जा सका।

अन्त में याचिका के दस वर्ष तक अनिस्तारित रहने के कारण हारकर सर्वोच्च न्यायालय को आदर्श पुलिस अधिनियम के तैयार होने तक के लिए निम्न दिशा निर्देश जारी करने पड़े।

(क) पुलिस कार्यों से सम्बन्धित नीति निर्धारित करने तथा निर्देश जारी करने के लिए राज्य सुरक्षा आयोग का गठन।

(ख) पुलिस उप अधीक्षक एवं उनके नीचे के अधिकारियों की नियुक्ति, पदोन्नति एवं स्थानान्तरण से सम्बन्धित निर्णय लेने तथा पुलिस अधीक्षक व उनके

(26)

ऊपर के अधिकारियों के स्थानान्तरण के सम्बन्ध में राज्य सरकारों को संस्तुति करने के लिए डाइरेक्टर जनरल ऑफ पुलिस की अध्यक्षता वाले एक पुलिस ऐस्टैबलिशमेन्ट बोर्ड की स्थापना।

(ग) पुलिस कर्मियों के विरुद्ध उत्पीड़न की शिकायतों को देखने के लिए एक पुलिस कम्प्लेन्ट अथारिटी की स्थापना।

सर्वोच्च न्यायालय ने यह भी आदेश दिया किया किसी भी पुलिस अधिकारी की एक स्थान पर काम की अवधि दो वर्ष से कम नहीं होनी चाहिये।

यदि इन निर्देशों का पालन किया जाता तो पुलिस को अवांछनीय राजनीतिक दबाव से बचाया जा सकता था। किन्तु किसी भी राज्य ने निर्देशों का निष्ठा से पालन नहीं किया। अधिकांश ने इनकी अनदेखी की। उन पर शीर्ष अदालत की स्पष्ट अप्रसन्नता का भी कोई प्रभाव नहीं दिखाई देता। उत्तर प्रदेश सरकार ने 2010 के अन्त में इस आशय का एक शासनादेश जारी किया कि उपनिरीक्षक से पुलिस महानिदेशक स्तर को किसी अधिकारी के दो वर्ष के पहले स्थानान्तरण करते समय लिखित रूप से उसका कारण बताने की आवश्यकता होगी। किन्तु इस आदेश के एक दिन पूर्व ही 73 अधिकारियों के स्थानान्तरण किये गये। यही नहीं आदेश के बाद नये वर्ष के पहले ही दिन 27 आई पी. एस. अधिकारियों के स्थानान्तरण कर दिये गये। यह कहा जा रहा है कि एक दरोगा ने सांसद से मिलकर एक आई जी का इसलिए स्थानान्तरण करा दिया जिससे वे उसके यहां दौरे न कर सकें। यदि पुलिस पर राजनीति इसी प्रकार से हावी रही तो सुधार की आशा करना व्यर्थ है।

राष्ट्रीय पुलिस कमीशन 1962 के प्रमुख एम सी सक्सेना ने एक बार लिखा कि पुलिस का प्रमुख कार्य अपराध का पता लगाना नहीं रह गया है। कारण कि सभी गृह मंत्री पुलिस का उपयोग सबसे पहले अपने राजनीतिक प्रतिद्वंद्वियों को तंग करने में तथा उसके बाद अपनी पार्टी के लोगों के विरुद्ध चल रहे मामलों को समाप्त करने में करते हैं। तीसरी प्राथमिकता वी आई पी की सुरक्षा होती है व अन्त में पुलिस का उपयोग अपराधों को रोकने में किया जाता है। जब तक पुलिस का राजनीतिक उपयोग समाप्त करने की इच्छा शक्ति नहीं आती तब तक शायद सर्वोच्च न्यायालय भी वास्तविक सुधार लाने में सक्षम न हो सकेगा।

ऐसा लगता है कि पुलिस में संस्थागत परिवर्तन ही सुधार ला सकता है। चुनाव आयोग की भांति स्वतंत्र केन्द्रीय पुलिस आयोग एवं प्रान्तीय पुलिस आयोग गठित करने की आवश्यकता है। जापान में स्वतंत्र पुलिस आयोग कार्यरत है। भारत में क्यों नहीं हो सकता? कानून व्यवस्था निश्चित रूप से गृह मंत्रालय का विषय है किन्तु अपराधों की जांच स्वतंत्र पुलिस आयोग के पास होनी चाहिये।

□

मशीनी किताब के युग में

— गोविंद सिंह

क्या किताब की मौत का समय आ गया है? लेखक बिरादरी इसकी कल्पना भर से ही सिहर उठती है। पिछले साल लंदन बुक फेयर में जब एक ई-बुक लेखिका ने 'डिजिटाइज़ ऑर डाइ' का ऐलान किया तो लेखक बिरादरी जैसे सन्न रह गई।

(27)

वाल स्ट्रीट जर्नल का एक पेज सामने हैं, जिसकी प्रमुख सुर्खी पर आकर रुक जाता हूं। लिखा है डिजिटाइज़ ऑर डाइ। यह बीते साल का एक सबक है, उन सबके लिए, जो मीडिया, सिनेमा या किताब जैसे कारोबारों से जुड़े हैं। डिजिटल हो जाइए वरना मरिए। डिजिटल का शाब्दिक अर्थ अंकीय होना है यानी कोई भी चीज, चाहे वह किसी भी रूप में हो, उसे अंकीय हो जाना होगा। यही आज का मंत्र है। कम्प्यूटर, जो सारी दुनिया को नचा रहा है, वह डिजिटल होने की ही प्रक्रिया है। उसके भीतर किसी भी पदार्थ को अंकों में बदलने की ताकत है। अंकों में बदल कर ठोस पदार्थ भी आभासीय यानी वर्चअल पदार्थ में बदल जाता है। आभासीय को पदार्थ कहा भी जाए या नहीं? क्योंकि वह है भी और नहीं भी।

मीडिया के लिए इस हिदायत का पालन करना मजबूरी है। इसलिए वह तेजी के साथ डिजिटल हो रहा है। अखबार, टेलीविजन चैनल, रेडियो और सिनेमा सभी डिजिटल हो रहे हैं। अपने देश में तो फिर भी अखबार और पत्रिकाएं कागजी स्वरूप में जीवित हैं, पश्चिमी देशों में वे जैसे अंतिम मुकाम पर पहुंच कर ठहर गए हैं। पाठकों को वे मुफ्त दिए जा रहे हैं, फिर भी उनका प्रसार नहीं बढ़ रहा। अखबार या पत्रिकाओं को डिजिटल रूप में पढ़ाने की आदत डाली जा रही है। ई-पेपर या ई-मैगजीन के रूप में उनके इंटरनेटी संस्करण मुफ्त में उपलब्ध हो रहे हैं। बल्कि वे कागजी संस्करण की तुलना में कहीं ज्यादा समृद्ध हैं। वे दैनिक या साप्ताहिक पत्र के अलावा पल-पल की जानकारी मुफ्त में परोस रहे हैं। धीरे-धीरे उनकी आदत भी हमें पड़ रही है। लेकिन यह देख कर एक अजीब-सी सिहरन होती है कि जिन किताबों को हम बहुत सहेज कर रखते रहे हैं, धीरे-धीरे वे भी डिजिटल हो रही हैं।

पिछले दिनों अमेरिका से एक मित्र आए तो उनके पास सात इंच बाई नौ इंच का आईपैड था, जिसमें सैकड़ों किताबों को पढ़ने की सुविधा भी थी। यों जिस दिन

आईपैड आया था, उस दिन एप्पल कंपनी ने यह घोषणा भी की थी कि उसमें 30 हजार किताबों को पढ़ा जा सकता है। इसी तरह से हजारों किताबों को पढ़ने की सुविधा देने वाला किंडल भी है और इंटरनेट पर पढ़ी जा सकने वाली हजारों किताबों की साइटें अलग हैं। किताबों के कागजी संस्करणों की तुलना में ई-संस्करण कहीं सस्ते हैं। इंटरनेट पर हजारों किताबें (आधी या पूरी) मुफ्त में पढ़ी जा सकती हैं। नई पीढ़ी जहां इसे सुविधा के रूप में देखती हैं, वहीं अंधेड़ लोग इसे बीमारी की तरह से देख रहे हैं। यानी जिन्हें रखने के लिए हम अपने घर में एक अलग स्टडी रूम रखा करते थे, वे सारी किताबें एक छोटी सी मशीन में सिमट जाती हैं। हम यह कह सकते हैं कि अभी तक हिंदी को यह बुखार नहीं चढ़ा है, लेकिन बकरे की अम्मा कब तक खैर मनाएगी? क्योंकि किंडल और आईपैड पर हिंदी की कुछ किताबें अपलोड हो चुकी हैं। गूगल पर भी पीडीएफ फॉरमैट में हिंदी किताबें दिखने लगी हैं। आज पीडीएफ में आ रही हैं तो कल ई-बुक फॉरमैट में भी आ ही जाएंगी।

इसलिए सवाल यह उठता है कि क्या किताब की मौत का समय आ गया है? लेखक बिरादरी इसकी कल्पना भर से ही सिहर उठती है। पिछले साल लंदन बुक फेयर में जब एक ई-बुक लेखिका ने डिजिटल और ड्राई का ऐलान किया तो लेखक बिरादरी जैसे सन्न रह गई। लेकिन वहीं ऐसे वैज्ञानिक भी थे, जिन्होंने बताया कि मस्तिष्क कागज और स्क्रीन पर शब्दों को पढ़ने की प्रॉसेसिंग एकदम अलग-अलग तरीकों से करता है। कागज की किताब जहां हृदय के बेहद करीब होती है, वहीं स्क्रीन पर पढ़ी जाने वाली किताब के साथ एक यांत्रिक रिश्ता होता है। हाथ से लिखने की आदत वाले लेखक जब आधी उम्र के बाद कम्प्यूटर पर लिखना शुरू करते हैं तो विचार प्रक्रिया बनती ही नहीं। आप किताब पढ़ते-पढ़ते रो पड़ते हैं, किताब से मुंह को छुपा लेते हैं, पढ़ते-पढ़ते सिरहाने रख सो जाते हैं। मशीनी किताब के साथ शायद वैसा रिश्ता न बन पाए। लेकिन शायद हर युग के अवसान के समय ऐसा ही होता है। जब ताड़ पत्रों या भोज पत्रों का युग आया होगा, तब पत्थरों पर अपने मन की भावनाएं उकेरने वाले हमारे पूर्वज भी क्या ऐसे ही नहीं सोचते रहे होंगे?

When I have a subject in hand, I study it profoundly. Day and night it is before me. I explore it in all its bearings, my mind becomes pervaded with it. The effort I make, people are pleased to call the fruit of genius. Actually it is the fruit of labour and thought.

— Alexander Hamilton

बाल साहित्य एवम् बाल मनोविज्ञान

— राजकुमार जैन 'राजन'

बालक अर्थात् राष्ट्र का भविष्य। उसकी शिक्षा, संस्कार का मतलब है राष्ट्र की शिक्षा-संस्कार। राष्ट्र के नागरिक की यह अवस्था वह बुनियाद है जिस पर राष्ट्र के भविष्य की इमारत खड़ी होगी।

बच्चे का मन एक कोरी स्लेट जैसा होता है। स्लेट पर लिखी इबारत तो कभी भी मिटाई जा सकती है, बाल मन पर अंकित कुछ भी अमिट स्थान लेता है। इसलिए बालक के मनोविज्ञान को समझते हुए उसकी शिक्षा-दीक्षा में बड़ी सावधानी रखनी चाहिए।

(28)

बच्चा ईश्वर की बनाई वह अलभ्य, अनमोल कृति है जिससे कायम है-जीवन की धार, परम्पराएं, संस्कृति और शाश्वत मूल्य। यह अनुपम कृति जितनी सुकोमल है उतनी ही जिज्ञासु भी। यही कारण है कि बाल मन सबसे अधिक संवेदनशील होता है। अपने आस पास हो रही हर घटना से सबसे पहले जो प्रभावित होता है वह है-यही बाल मन। हम सभी यह जानते हैं कि आज के परिवेश में बालक की जिज्ञासा का क्षितिज चाहे जितना बढ़ा हो गया हो पर उसकी प्रारम्भिक जिज्ञासा अपने मूल रूप में अपरिवर्तित है। बालक जिस अवस्था से बोलना सुनना और जानना शुरू करता है उस अवस्था में उसके मनोविज्ञान में बराबर एक जैसी स्थिति बनी होती है। बच्चे के लिए पहली 'रचना' का जन्म उसी दिन शुरू हो जाता है जब उसके मन में जिज्ञासा का जन्म होता है।

बाल साहित्य की परम्परा बहुत पहले वाचन और श्रवण से शुरू होती है। विश्व में अनेक लोक-कथाओं और लोरियों के सर्जक सच्चे अर्थ में बाल मनोविज्ञान के गूढ़ ज्ञाता थे। वे अलिखित लोक कथाएं-अपने मनोरंजक तत्वों तथा कौतुहल से ऐसी सराबोर होती हैं कि बच्चे की जिज्ञासा इतनी प्रबल होती है कि वह अपना खाना-पीना भूलकर उसे पूरा सुने बिना, सुनाने वाले को उठने ही नहीं देता था। बाल मन बढ़ा कोमल और कल्पनाशील होता है। प्रारम्भिक अवस्था में पढ़ने की उम्र से पहले ही वह ऐसी कहानियां सुनना चाहता है कि जो उसके कल्पनाशील मन को ऊंची उड़ान दे। यह परम्परागत अलिखित बाल साहित्य बच्चों में पठन रुचि की ललक पैदा करता है। बच्चों के लिए इस प्रकार की कहानियों, गीतों, लोरियों आदि के रचयिता कौन थे? आज के बाल साहित्य के इतिहास में वे अनाम हैं, पर वे ऐसी बुनियाद हैं जिन्होंने

बाल मनोविज्ञान को अपने अन्तर्मन से जाना और समझा था। उन्होंने अपनी प्रतिमा के प्रदर्शन के लिए ये रचनाएं नहीं गढ़ीं बल्कि बाल मन के धरातल पर अपनी कल्पना को उतार कर यह सब रचा।

यह हम सभी जानते हैं कि जीवन में सब कुछ परिवर्तनशील है और बदलना हम सबकी नियति है। यही प्रकृति का नियम है और विकास की प्रक्रिया भी। किन्तु आज परिवर्तन की आंधी का वेग इतना तेज है कि उसमें सब कुछ विलुप्त होता चला जा रहा है—हमारी परम्पराएं, परिपाटियां, संस्कार, आचार और विचार। इनसे सबसे पहले कौन प्रभावित होता है? निसंदेह बच्चे का सुकोमल मन। दुविधा में पड़ा यह सुकोमल मन अनुभव कर रहा है आधुनिक समाज में छाई समस्याओं को। किस प्रकार परम्पराएं विलुप्त हो रही हैं, परिवार टूट रहे हैं, सामाजिक जीवन में कड़वाहट आ रही है, संस्कारों का विघटन हो रहा है.. स्थिति इतनी सोचनीय है कि कभी-कभी लगता है कि वह कौन सी चीज है जो हम अपनी भावी पीढ़ी को देकर जाएंगे?

क्या हमें बच्चों को ऐसा स्वच्छ पर्यावरण नहीं देना चाहिये जहां वह भय मुक्त होकर स्वच्छंद मन से अपनी बाल सुलभ प्रवृत्तियों को कायम रख सके? आज का हर चिंतक—बाल साहित्यकार इस भयावह परिस्थिति को महसूस ही नहीं कर रहा है बल्कि इसके बारे में चिंता भी कर रहा है।

आज हमारे—आपके सामने यही सबसे बड़ी चुनौती है कि हमें किस प्रकार का बाल साहित्य बच्चों को देना चाहिए। बाल साहित्य की महत्ता और आवश्यकता को तो हमने स्वीकार किया है लेकिन उसके मापदण्ड, मूल्यांकन के आधार और भारतीय बालकों के सर्वांगीण विकास के लिए अपेक्षित बाल साहित्य के संदर्भ में हम मौन ही रहे हैं जबकि इस संबंध में गम्भीरता से विचार अपेक्षित था। वक्त के साथ-साथ बाल साहित्य सृजन भी प्रचुर मात्रा में हुआ। आज बाल साहित्य अपने अस्तित्व के प्रति सजग है तथा साहित्य की सभी विधाओं—कहानी, कविता, नाटक, उपन्यास, यात्रा वृत्तान्त, ज्ञान-विज्ञान, पहेलियां आदि विषयों से बाल साहित्य समृद्ध हुआ है। बाल साहित्य का लेखक भी पहले जैसा उपेक्षित नहीं रहा। वह प्रतिष्ठित, चर्चित तथा सम्मानित हो रहा है। वह बच्चों के लिए लिखकर संतुष्ट होता है।

बाल मनोविज्ञान को समझना और तदनुसार बाल साहित्य का सृजन करना लेखक के लिए आवश्यक है। यह सही है कि बच्चों के लिए लिखना कठिन है। इसके लिए रचनाकार को स्वयं बालक बनना होता है। बालक बनना आसान नहीं है। प्रख्यात साहित्यकार एवं चिंतक श्री विष्णु प्रभाकर के शब्दों में कहें तो “बच्चों के लिए लिखने के लिए परकाया प्रवेश आवश्यक है।” अर्थात् अपने बचपन की काया में प्रवेश। अपनी स्मृति के पन्ने पलटते-पलटते वहीं पहुंच जाना जहां हम अधिक बोल नहीं सकते थे लेकिन समझ सकते थे। बच्चों के लिए लिखने के पूर्व लेखक की

दृष्टि स्पष्ट होनी चाहिये। वह बच्चों के मनोविज्ञान को समझे, उसकी परिस्थितियों और उसकी आयु को ध्यान में रखे और उन्हीं के अनुरूप भाषा का प्रयोग करते हुए साहित्य सृजन करे तभी बालकों के लिए अच्छा साहित्य लिखा जा सकता है।

बालक उन रचनाओं को पसन्द करता है जो उनके मनोनुकूल हों। इस वैज्ञानिक युग में संचार के आधुनिक संसाधनों के फलस्वरूप बालक की मानसिक क्षमता में वृद्धि हुई है और आज वह ज्ञान-विज्ञान की बारीक रेखाओं को भी पकड़ सकता है। बालक को अपने आसपास की परिस्थितियों से भी रूबरू होना पड़ता है। उसके चंचल मन के लिए खुला आकाश है। बाल सुलभ जिज्ञासाओं का समाधान, कल्पनाओं की उड़ानयुक्त रचाएं बालकों को खास तौर से पसंद आ सकती हैं। बालकों को बाल साहित्य के नाम पर कुछ भी थोपा नहीं जाना चाहिए क्योंकि थोपे हुए साहित्य को बालक स्वीकार नहीं करेगा। बाल साहित्य लिखने की आवश्यकता है और महत्त्व को हम स्वीकारते हैं। आज हमारे देश के पारिवारिक, सामाजिक वातावरण, बच्चों के मानसिक स्तर और बौद्धिक क्षमता को देख-परख कर उसके अनुसार लिखने की आवश्यकता है। बालकों के आयु वर्ग का निर्धारण हम अपनी परिस्थितियों को देखकर ही कर सकते हैं। बाल साहित्य का भविष्य उज्ज्वल है इसमें अनेक संभावनाएं दृष्टिगत होती हैं।

(29)

यहाँ, मैं पुनः दोहराना चाहूंगा कि आज बाजारवाद के चलते ऐसा बाल साहित्य भी प्रचुर मात्रा में प्रकाशित किया जा रहा है जो बाल मन को गुमराह कर रहा है उसे हिंसक बना रहा है। ऐसे साहित्य से बालकों को दूर रखना भी हमारा ही कार्य है। यदि हम बच्चों की सोच, उनके विचारों, उनकी मानसिकता को ध्यान में रखकर चिंतन करें तो प्रतीत होता है कि आज का वक्त बाल-साहित्यकारों के लिए बहुत बड़ी चिंता और चुनौती का है। क्योंकि उनके पास बागडोर है—संसार भर के बच्चों में चेतना जगाने की, उन्हें उचित दिशा प्रदान करने की। कहने का मतलब है कि हमारे बाल साहित्य लेखकों में ऐसा करने की भरपूर क्षमता है, पर आज की आवश्यकता है कि हर साहित्यकार की सोच को आंदोलित किया जाए। उन्हें घिसे-पिटे मूल्यों, अंधविश्वासों, परम्पराओं, पौराणिकता और सामंती मूल्यों के मापदण्ड से थोड़ा हटकर सोचना होगा।

हर बाल साहित्य लेखक के अपने विचार अपनी कल्पनाएं हैं किन्तु मैं केवल इतना चाहूंगा कि यदि हम आधुनिक बाल साहित्य के माध्यम से बच्चों की कल्पनाओं को उड़ान भरने की पूरी छूट देते हैं तो साथ ही साथ हमें उसे जिन्दगी के यथार्थ से भी परिचित होने का अवसर देना चाहिये। अतः हमें अब इस प्रकार के बाल साहित्य की रचना पर विचार करना है जो हमारी भावी पीढ़ी तक पहुंच सके और उसे भविष्य की दुनिया में जीने की शक्ति और साहस दे।

□

ग्रामीण भारत में स्वास्थ्य : एक नजर

– विनोद कुमार सिन्हा

देश की 70 प्रतिशत आबादी गांवों में रहती है, फिर भी वहां उपलब्ध स्वास्थ्य सेवाएं शहरों के मुकाबले 15 प्रतिशत भी नहीं हैं। केंद्रीय स्वास्थ्य मंत्रालय के आंकड़ों के अनुसार देश में 2,083 लोगों पर एक चिकित्सक और प्रति 6,000 लोगों पर एक सहायक नर्स उपलब्ध होने चाहिए। लेकिन 70 से 80 प्रतिशत चिकित्सक और 90 प्रतिशत नर्स शहरी क्षेत्रों में काम कर रहे हैं। इससे समझा जा सकता है कि ग्रामीण स्वास्थ्य व्यवस्था की हकीकत क्या है?

भारत में स्वास्थ्य सुविधाओं के विकास के लिए सन् 1946 में बनी डॉ. जोसेफ भोर समिति की सिफारिश थी कि देश में 500 व्यक्तियों पर एक चिकित्सक हो, लेकिन ये सिफारिशें कागजी ही रहीं। कारण कि कोई चिकित्सक शहर से गांव में जाना ही नहीं चाहता।

इसमें संदेह नहीं कि ग्रामीण स्वास्थ्य केंद्रों पर सुविधाओं का अभाव एक अहम मुद्दा है, लेकिन यह भी सच है कि चकाचौंध के इस दौर में कोई चिकित्सक, अधिकारी या सरकारी बाबू गांव में रहना ही नहीं चाहता। आज भी गांवों में वहां के लोगों के स्वास्थ्य की पहरेदारी वे तथाकथित चिकित्सक ही करते हैं जिन्हें 'झोला छाप डॉक्टर' कहा जाता है।

ग्रामीण क्षेत्रों में चिकित्सकों की बहुत कमी है। शहरों में जहां 662 की आबादी पर औसतन एक डॉक्टर हैं वहीं ग्रामीण क्षेत्रों में 8,333 की आबादी पर एक डॉक्टर। डॉक्टर गांव की अपेक्षा शहर में काम करना पसंद करते हैं। भोर समिति ने अपने अध्ययन में पाया था कि शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों में डॉक्टर और जनसंख्या के अनुपात में भारी अंतर है। तब समिति ने अनुशंसा की थी कि ज्यादा से ज्यादा चिकित्सकों को नौकरी देकर गांवों में भेजा जाए।

मगर इस सिफारिश के तीस वर्ष बाद यानी 1975 तक भी स्थिति में बदलाव नहीं आया। इन वर्षों में मेडिकल कॉलेजों में चिकित्सकों की संख्या में भारी वृद्धि हुई, फिर भी गांवों में चिकित्सकों के पद खाली ही रहे। उदाहरण के लिए 1972 में कुल 5,192 प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्र थे। सरकार के प्रत्येक केंद्र के लिए दो-तीन

चिकित्सकों के पद सृजित किए थे पर मात्र 2,951 केंद्रों पर ही दो-दो डॉक्टर जा पाए। 2,101 प्राथमिक केंद्रों पर एक-एक डॉक्टर गया और 140 केंद्र खाली रहे। उस समय देश में डॉक्टर-जनसंख्या का अनुपात 4,200 लोगों पर एक डॉक्टर का था। यह भी तथ्य है कि उसी समय 500 लोगों पर एक डॉक्टर उपलब्ध था।

चिकित्सकों की संख्या में लगातार वृद्धि और ग्रामीण क्षेत्रों में सरकारी नौकरियों के अवसरों से भी चिकित्सकों का 'शहर प्रेम' नहीं डिग पाया। वास्तव में 1960-70 के दशक में बड़ी संख्या में डॉक्टर विदेश चले गए थे। 1963-66 के बीच हुए एक अध्ययन का निष्कर्ष यह है कि उस दौरान मेडिकल डिग्री प्राप्त छात्रों में 60 प्रतिशत ऐसे थे जिनके माता-पिता या तो सरकारी नौकरी में या स्वयं डॉक्टर थे।

एक अन्य अध्ययन के अनुसार 1978 में 41 प्रतिशत डॉक्टर निजी प्रैक्टिस कर रहे थे। 25 प्रतिशत सरकारी नौकरी और 10.5 प्रतिशत विदेशों में कार्यरत थे। 1990-1990 तक 73 प्रतिशत डॉक्टर निजी प्रैक्टिस में आ गए थे जबकि सरकारी नौकरी में चिकित्सकों की पर्याप्त मांग थी। उस समय भी यह सुझाव दिया गया था कि डॉक्टर एक निश्चित अवधि के लिए गांवों में जाकर सेवाएं दें, लेकिन तब भी इसका डट कर विरोध हुआ था।

ग्रामीण स्वास्थ्य की उपेक्षा की एक वजह मेडिकल शिक्षा की विषय-वस्तु भी है, इन दिनों एमबीबीएस शिक्षा का पाठ्यक्रम ही ऐसा है कि वह आम लोगों, खासकर गरीबों से चिकित्सकों का अलगाव बढ़ाता है। मेडिकल शिक्षा का बुनियादी उद्देश्य यह होना चाहिए कि देश की स्वास्थ्य समस्याओं से निबटने के लिए जरूरी ज्ञान और हुनर चिकित्सकों को दिए जाएं। भारत में स्थिति यह है कि पढ़ाई पूरी कर लेने के बाद मेडिकल छात्रों को देश में सबसे ज्यादा होने वाली बीमारियों के बारे में बहुत कम जानकारी होती है। उन्हें जिन बिमारियों के बारे में पढ़ाया जाता है वे भारत में बहुत कम होती हैं।

उदाहरण के लिए बहुतेरे डॉक्टरों को टीबी, कोढ़ या कालाजार जैसे रोगों के बारे में बहुत कम जानकारी होती है। इसके विपरीत विद्यार्थियों को हृदय रोग, कैंसर, डायबिटीज, एचआईवी एडस जैसे रोगों के बारे में विस्तार से पढ़ाया जाता है। सब जानते हैं कि ये बीमारियां उन बहुत थोड़े लोगों को होती हैं जो प्रायः शहरी और संपन्न वर्ग के होते हैं। आम बीमारियों की उपेक्षा का कारण शायद यही है कि इनकी चपेट में गरीब लोग आते हैं। शायद यह भी माना जाता हो कि इन बीमारियों का अध्ययन बौद्धिक तौर पर चुनौतीपूर्ण नहीं है।

गरीब मरीजों से चिकित्सा छात्रों के अलगाव का सबसे बड़ा कारण शायद यह

है कि चिकित्सा शिक्षा में अस्वस्थता के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक पहलुओं पर ज्यादा ध्यान नहीं दिया जाता। मेडिकल शिक्षा में मुख्य रूप से इस बात पर जोर दिया है कि बीमारी हो जाने पर इसका इलाज कैसे किया जाए। इसमें सामाजिक हालात को समझने की कोशिश नहीं की जाती, यानी यह कि इन बीमारियों का मूल स्रोत क्या है। जो बीमारियां गरीबी या अभाव का नतीजा है उनकी या तो उपेक्षा की जाती है या फिर कुछ समय के लिए कामचलाऊ इलाज कर दिया जाता है। जैसे औरतों में खून की कमी या बच्चों में कुपोषण के मूल कारणों की उपेक्षा की जाती है।

1995 में जारी एक रिपोर्ट में विश्व स्वास्थ्य संगठन ने 'अत्यधिक गरीबी' को अंतराष्ट्रीय वर्गीकरण में एक रोग माना है। इसे जेड 59.5 का नाम दिया गया है। रिपोर्ट में कहा गया है गरीबी तेजी से बढ़ रही है और इसके कारण विभिन्न देशों और एक ही देश के लोगों के बीच भी दूरियां बढ़ती जा रही हैं। इससे स्वास्थ्य समस्याएं और गंभीर हुई हैं। एक आकलन के अनुसार, भारत में पांच वर्ष से कम उम्र के बच्चों में प्रत्येक तीन में से दो बच्चे कुपोषित हैं। गिनती में यह संख्या सात करोड़ से ज्यादा है। विश्व के 17 करोड़ कुपोषित बच्चों में से 40 प्रतिशत बच्चे भारतीय हैं।

मेडिकल शिक्षा के क्षेत्र में सरकार की मौजूदा नीति साफतौर पर निजीकरण और वैश्वीकरण की पक्षधर है। सरकार स्वयं स्वास्थ्य क्षेत्र को तेजी से निजी क्षेत्र में धकेल रही है। जाहिर है, सरकार का यह दृष्टिकोण संविधान के संकल्प-सबको मुफ्त स्वास्थ्य सेवा उपलब्ध कराने की भावना के एकदम प्रतिकूल है। शहर-उन्मुखी मौजूदा स्वास्थ्य नीति से डॉक्टर भी प्रभावित हैं और वे मुनाफे के इस धंधे को और विकसित करने में लगे हुए हैं। गांव की परवाह किसे है?

अब तो अस्पतालों के 'शेयर' बाजार में आ रहे हैं। दिल्ली स्थित एक पांच सितारा अस्पताल जनता के 54 करोड़ रुपये और 15 एकड़ जमीन पर इस उद्देश्य से स्थापित होने दिया गया था कि उसमें गरीब रोगियों के लिए तीन सौ बिस्तर और मुफ्त बाह्य रोगी विभाग उपलब्ध होंगे, लेकिन अभी तक ऐसा नहीं हो सका है। दुनिया में अपने किस्म के कुछ चुनिंदा अस्पतालों की श्रेणी का यह अनोखा अस्पताल चिकित्सा सेवा के 'उद्योग' में बदलने का बेहतरीन उदाहरण है।

सवाल केवल डॉक्टरों द्वारा गांव की उपेक्षा का नहीं है। यह हर उस अधिकारी, व्यक्ति और संगठन पर लागू होता है जो गांव और देश के लिए जरूरी है। खासकर उन पर, जिन्हें तैयार करने में देश के ग्रामीणों का धन भी लगता है और जिनकी पढ़ाई में गांव के विकास की बात अंतर्निहित है। क्या चिकित्सकों को अपने कर्तव्यों पर जोर देकर मानवता और सेवा को भी अपने काम का हिस्सा नहीं बनाना चाहिये?



आउटसोर्सिंग क्या बला है?

— हरिकृष्ण निगम

(31)

हमारे देश में जब से आर्थिक सुधारों एवं निजीकरण के दौर का प्रारम्भ हुआ है, अंग्रेजी भाषा की जो शब्दावली सबसे अधिक सामान्य वार्तालाप में उपयोग की जा रही है उसमें 'आउटसोर्सिंग' प्रमुख है। इसी तरह भूमण्डलीकरण के कारण जब से बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने इस देश में पैर पसारें हैं बी.पी.ओ. एक दूसरा आधुनिक आद्यक्षरों का वाक्यांश है जो हर पढ़े-लिखे की जबान पर रहता है। हमारे मीडिया में तो इस शब्द को तब से अधिक उपयोग में लाया गया जब से अमेरिका और कुछ पश्चिमी देशों में अपनी बढ़ रही बेरोजगारी के लिए इसी 'आउटसोर्सिंग' को दोषी बताया गया। आर्थिक मंदी और लगभग 10 प्रतिशत बेरोजगारी की समस्या के लिए दूसरे एशियाई लोगों के वहां बसे लोगों को दोषी के रूप में देखा जा रहा है। दूसरी ओर अमेरिकी उद्यमियों द्वारा उनके नियमित श्रमिकों का रोजगार उन देशों में 'आउटसोर्सिंग' के हवाले किए जा रहा है जहां उनके स्तर से यह काम काफी सस्ते में किया जा सकता है। स्वयं राष्ट्रपति बराक ओबामा ने अपने चुनावी घोषणापत्र में भी इस 'आउटसोर्सिंग' पर प्रतिबंध लगाने का आश्वासन दिया था। उस समय हड़कम्प मच गई थी जब अपने वायदे को मूर्त रूप देने तथा अपनी लोकप्रियता को गिराने से बचाने के लिए उन्होंने कुछ दिनों पूर्व अमेरिका में काम करने के इच्छुक लोगों को दिया जाने वाला वीजा 'एच-वन-बी' और 'एल-वन' का शुल्क बढ़ाकर दो हजार डालर कर दिया था। साथ ही साथ अमेरिकी उद्योगपतियों को भी चेतावनी दी थी कि अगर वे देश का काम विदेशों में करवायेंगे तो करों में छूट या अन्य सुविधाओं से उन्हें वंचित कर दिया जाएगा। फिर भी 'आउटसोर्सिंग' का 60 प्रतिशत से अधिक का बाजार अमेरिका से आ रहा है व उत्तरोत्तर प्रगति कर रहा है। इसका प्रमुख कारण भारतीयों के संगणकों के कार्य की गुणवत्ता और तुलनात्मक रूप से न्यूनतम कीमत पर उपलब्धता है।

शायद इसीलिए चाहें हमारे देश के नगरों के 'काल सेन्टर' हों या 'बी.पी.ओ.' उनमें दिन रात काम करने वालों को कुछ लेखक 'साइबर कुली' तक कह चुके हैं। अमेरिका के उपर्युक्त उदाहरण से स्पष्ट है कि चाहे ठेके पर हो, या अनुबंध के माध्यम से अथवा 'सब कान्ट्रैक्ट' के जरिए हो, 'आउटसोर्सिंग' का साफ-साफ अर्थ

किसी तीसरी पार्टी द्वारा निष्पादित कार्य को कहा जा सकता है। यह हमारे देश में क्यों फल फूल रहा है यह विचारणीय है। इसका एक कारण संचार क्रान्ति तो है लेकिन विशेषकर अमेरिका का टाइम जोन भी है। जब हमारे यहां दिन होता है वहां रात होती है। उनके द्वारा वहां दिन के अन्त तक भेजे हुए काम को अगले दिन जब सामान्यतः वे प्रातः कार्यालय जाते हैं उसका भारतीय हल उनकी टेबुल पर पहुंच जाता है। वैसे भी त्वरित संप्रेषण क्षमता की उपलब्धि से और भारत में अंग्रेजी भाषा के अधिकाधिक उपयोग से वह अन्य देशों जैसे चीन, जापान, फ्रांस, जर्मनी या दूसरे एशियाई देशों से एक कदम आगे रहता है। शायद इसीलिए 'लुफ्तहांसा' जैसी प्रसिद्ध जर्मन वायुसेवा हो, या कुछ अन्तर्राष्ट्रीय कार निर्माता या बड़े बहुराष्ट्रीय कम्पनियों की वैश्विक ग्राहक सेवा के ढांचे, उनके नेटवर्क के केंद्रीय कार्यालय भारत में ही स्थित होते हैं। यहां तक कि किसी बड़ी कम्पनी का ग्राहक दूर सुदूर के देशों के किसी अनामी क्षेत्र में भी बैठा हो, उसके प्रश्नों व मांगी गई जानकारी का हल उसी के लहजे में ऐसी अंग्रेजी में दिया जाता है जैसे वह उनके क्षेत्र का हो। उसे पता ही नहीं चलता कि वह एक भारतीय से, इस देश के पुणे, मुम्बई, बंगलौर या गुडगांव के किसी कार्यालय से वार्तालाप कर रहा है। आज 'न्यूट्रल अंग्रेजी' के साथ-साथ 'बी.बी.सी.' की 'क्विन्स इंग्लिश' कहे जाने वाले लहजे के साथ-साथ अमेरिका अश्वेत अथवा पूर्वी समुद्र तटके न्यूयार्क या न्यूजर्सी इलाकों अथवा लूसियाना या टेक्सास या डेनवर जैसे क्षेत्रों में अंग्रेजी किस स्थानीय पुट के साथ बोली जा सकती है इसका भी प्रशिक्षण भारतीय कर्मचारियों को आवश्यकतानुसार दिया जाता है। इस कारण भी 'आउटसोर्सिंग' के उद्यम को भारत में सन् 2000 के बाद जल्दी ही जैसे पंख लग गए हों।

यदि हम 'आउटसोर्सिंग' के आधुनिक घटनाक्रमों की ओर मुड़ कर देखें तो इटली की 'फेरारी' कार के निर्माताओं को इसका जनक माना जाना चाहिए। 80 के दशक में इस कार की कम्पनी ने अपने कार के साफ्टवेयर बनाने के लिए टी.सी. एस. के साथ अनुबन्ध किया। इसके बाद सिटी बैंक ने अपनी ऋण एवं अन्य सेवाओं को बढ़ावा देने के लिए भारत के साथ और अन्य देशों की संगणक कम्पनियों के साथ अनुबन्ध किया।

वैसे भारत में इस व्यवस्था का पदार्पण सन् 2000 में हुआ। 'स्पेक्ट्रामाईंड' को पहली 'बिजनेस प्रासेस आउटसोर्सिंग' या बी.पी.ओ. कम्पनी कहा जाता है। उसी साल 'ई-फण्ड' नामक कम्पनी मुम्बई में और 'ई-एक्स.एल.' नाम का एक बी.पी.ओ. नोएडा में खुला। सन् 2002 में 'विप्रो' ने 'स्पेक्ट्रामाईंड' का अधिग्रहण किया और बाद में 'विप्रो' की तरह 'इन्फोसिस', 'पटनी' एवं 'सत्यम्' ने भी बड़े स्तर पर इस उद्योग में प्रवेश कर संगणक व्यवसाय की कायापालट कर दी। वैसे बी.पी.ओ. का चलन इस

देश में कोका कोला कम्पनी की देन कहा जाता है जिसने पहली बार उत्पाद-वितरण के काम को 'आउटसोर्सिंग' में ग्राहक सेवा कैसे प्रदान की जाती है, उसका एक सशक्त माडेल दूसरी कम्पनियों के समक्ष उदाहरण की तरह रखा। आज तो चाहे बैंक हो, या बीमा या वित्तीय कम्पनियां सभी अपने खर्चों पर नियंत्रण रखने के लिए तीसरी पार्टी से अनुबन्ध कर कार्य के ठेके जैसे देते हैं।

वैसे हमारे देश में बहुत असें तक आम आदमी 'आउटसोर्सिंग' का क्षेत्र या अर्थ मात्र काल सेन्टर तक सीमित मानता रहा है। पर वस्तुतः यह काम का मात्र एक ही पक्ष है। अब तो उससे एक कदम आगे के.पी.ओ. या नालेज प्रासेसिंग आउटसोर्सिंग के जरिए ज्ञान एवं सूचना सम्बन्धी हर सेवा चाहे वह डॉक्टरों, अस्पतालों, अर्थशास्त्रियों, सांख्यिकी विशेषज्ञों की जरूरतें हों या तकनीकी पत्रकारों, लेखकों, पत्रकारों या व्यवसाय विश्लेषकों की दिनचर्या से जुड़े हों, सभी क्षेत्रों में यह सेवा उपलब्ध है।

(32)

आज देश भर में फैल बी.पी.ओ. में लगभग 22.3 लाख कर्मचारी काम करते हैं जिनमें से आधे स्वाभाविक रूप से रात्रि की पाली में काम करते हैं। एक अनुमान के अनुसार इन्टरनेट का उपयोग सिर्फ 9 बजे प्रातः से मध्यरात्रि तक करने वालों की संख्या ही साढ़े दस लाख है। सन् 2008 में इन्टरनेट का उपयोग करने वालों के एक सर्वेक्षण में लगभग साढ़े तीन करोड़ नियमित रूप से नेट का उपयोग करने वालों में से 32 प्रतिशत इसे 9 बजे रात्रि से 12 बजे रात्रि तक प्रयोग में लाते हैं और लगभग 3 प्रतिशत या 10,50,000 इसे अर्धरात्रि के बाद आन लाइन कार्य में लाते हैं। चाहे गुडगांव स्थित हरियाणा का संगणक केंद्र हो या बंगलारू अथवा मुम्बई हो यह शहरीकरण का एक नया पक्ष या रात्रि की अर्थव्यवस्था भी है जिसने कर्मचारियों की खानपान की अनियमितता और जीवनशैली द्वारा उनकी शरीर की घड़ी में व्यतिक्रम ला दिया है। पारम्परिक आठ घण्टे प्रतिदिन कार्य के स्थान पर रात्रि कालीन काम के घंटों के कारण कई स्वास्थ्य संबंधी और सामाजिक समस्यायें भी पैदा हो गई हैं। पारिवारिक सम्बन्धों के अलावा सम्बन्धियों या मित्रों के लिए समय देना भी दुर्लभ होता जा रहा है। बहुधा अनेक निजी कम्पनियों के अधिकारियों को रात्रि के 3 बजे या ऐसे ही किसी समय में चाहे सिडनी हो या कोई अमेरिकी शहर जिससे बात करने के लिए 'कान्फ्रेस काल' व्यवस्थित करनी हो घंटों बात करते देखा जा सकता है। सच तो यह है कि अब 24 घन्टे सचेत रहने और बातें करने की दुनिया बन चुकी है। लगता है इस देश में भी अब नियमित पारम्परिक काम के घंटों के बाद विपणन और वाणिज्य के अनेक रूपों के काम की शुरुआत होती है।

उद्योगपतियों की दृष्टि में आज इस व्यवसाय के नए-नए लाभप्रद पक्ष खुलते जा रहे हैं जिससे उनके कार्यक्षेत्र की परिधि लगातार विस्तृत हो रही है। अब तो अनेक उद्योगपति अपने उत्पाद के विपणन, प्रचार, प्रसार व उसकी छवि निर्माण के लिए विज्ञापन या जन सम्पर्क विभाग भी न रखकर किसी अनुभवी व निपुण मीडिया संस्थान से अनुबंध कर कम खर्चवाली सलाह को 'आउटसोर्स' करते हैं। डिजिटल सम्प्रेषण के युग में यह अधिक कारगर सिद्ध होता है। इसी तरह अलग-अलग हर शहर में सेवा केंद्र खोलने के स्थान पर कम लागत में किसी दक्ष एवं सक्षम संस्था के माध्यम से काम कराया जा रहा है।

पर यह भी सच है कि इस तरह के 'आउटसोर्सिंग' का चलन एक दुधारी तलवार है। व्यवसायी जहां अपने मुनाफे को सरलता से बढ़ा चुके हैं, यह कर्मचारियों व सफेदपोश श्रमिकों का घोर शोषण भी कर रहा है। नियमित स्थायी रोजगार कम होता जा रहा है। क्योंकि ठेके पर नियुक्त हुए कर्मचारियों के भविष्य की कोई सुरक्षा नहीं है, वेतनवृद्धि, पदोन्नति व सेवानिवृत्त होने पर मिलने वाले लाभों पर निरन्तर सीमाएं खिंचती जा रही हैं।



The practice of daily discipline alone can change our lives totally. Another benefit of daily disciplines is that they quickly create habits and habits create character.

Try not to become a man of success but rather try to become a man of value.

Success usually comes to those who are too busy to be looking for it.

Two kinds of belief that are necessary for success. You must believe that you deserve to succeed and you must believe that you have the ability to succeed.

धर्ममय अर्थ ही हितकारी होता है

यावज्जीवेत् सुखं जीवेत्, ऋणं कृत्वा घृतं पिबेत्। यह चार्वाक दर्शन है, जिसे अपने देश में ही नहीं, अमेरिका के मध्यम वर्ग ने काफी अंगीकार किया है। इससे प्रभावित साहित्य ने उधार लेकर घी पीने की सीख देने वाला एक नया पंथ प्रारंभ किया। इस साहित्य ने अमेरिका के मध्यम वर्ग में अंधाधुंध एवं बेशुमार कर्ज लेने की मानसिकता तैयार की। ये रचनाकार इस बात पर बल देते हैं कि कभी भी पैसे के लिए काम मत करो, ऐसी परिस्थिति रचो कि पैसा तुम्हारे लिए काम करे-डोन्ट वर्क फॉर मनी, लेट मनी वर्क फॉर यू। अस्सी और नब्बे के दशक में बहुप्रचलित एवं चर्चित इस साहित्य ने अपनी उलटी शिक्षा से विश्व के बेहद शक्ति संपन्न देश अमेरिका को एक हीन, दुर्बल एवं आत्मसंशयी देश बना दिया।

चार्वाक साहित्य का समर्थन करने वाली अमेरिकी जनता को अमीरी का ख्वाब दिखाने वाली प्रतिनिधि किताब है-'रिच डैड, पुअर डैड'। इसके लेखक हैं, रॉबर्ट कियोसाकी और शैरोन लेचर। इस किताब ने अमेरिका में ही नहीं, बल्कि सारे विश्व में लोकप्रियता प्राप्त की। इसकी इतनी प्रसिद्धि हुई कि लेखकों ने टाइटिल और उसकी सीरिज को भविष्य के लिए पेटेंट करा लिया। ख्याति का कारण इसकी आत्मकथात्मक शैली एवं कथावस्तु का रोचक होना है। सैंतालीस साल की उम्र में अत्यंत समृद्धि उपलब्ध कर लेने का दावा करने वाले रॉबर्ट ने इसमें बताया है कि यह कहानी एक गरीब लड़के की है, जो अपने दो पिताओं से संबंधित है। एक उसका वास्तविक गरीब पिता, जो ईमानदार, टैक्स चुकाने वाला, उच्च शिक्षित एवं उसूलों का पक्का है, पर आजीवन गरीबी से लड़ता-जूझता रहा और दूसरा उसका अमीर आठवीं फेल मानस पिता, जो वास्तव में उसके एक दोस्त का पिता था और जिसने उसे गरीबी से उबारकर धनी बनने का सूत्र समझाया।

इस कथा के माध्यम से यह दर्साया गया है कि पैसा तो पानी जैसा है, उसे मोड़ने की जरूरत है। बस, एकत्र हो जाता है। संपत्ति अर्जित करने के लिए मेहनत एवं ईमानदारी की आवश्यकता नहीं है, बल्कि उसके लिए अपने दिमाग का प्रयोग करना है और इसी का परिणाम है कि विश्व में शेयर मार्केट चल पड़ा है। इससे प्रभावित होकर डाइरेक्ट मार्केटिंग, पिरामिड मार्केटिंग और मल्टीलेवल मार्केटिंग कंपनियों ने इस किताब को अपना ब्रांड एंबेसडर बना लिया। किसी ने ठीक ही कहा

(33)

है कि यदि बिना श्रम किए आपको बेशुमार दौलत मिले तो आप श्रम क्यों करेंगे और आज जबकि समाज में संपत्ति की खूब प्रतिष्ठा है और चाहे इसके अर्जन का तरीका कैसा भी क्यों न हो, तो क्यों व्यक्ति श्रम एवं मेहनत करके अर्थ-लाभ करने की सोचेगा।

बिना श्रम के अपार संपत्ति अर्जन को खूब समझाने वाली रॉबर्ट की किताब इकलौती नहीं है। इस क्रम में अनेक साहित्य हैं, जिनकी कथावस्तु का आधार यही है। ग्लोबल वित्तीय साहित्य के लेखकों में 'अनलिमिटेड वेल्थ' के लेखक पॉल जेन पिल्लर, 'दि वारेन वफेट' लिखने वाले राबर्ट हेमस्ट्रांग, 'ओवर दि टॉप' के जिग जिगलर, 'क्रिएटिंग वेल्थ' के रॉबर्ट एलेन, 'बीटिंग दि स्ट्रीट' के लेखक पीटर लिंग, 'ट्रंप : दि आर्ट ऑफ डील' के रचयिता डोनाल्ड ट्रंप, 'इन्वेस्टमेंट वाइजर' के जिम रोजर्स, 'दि न्यू पोजिशनिंग' के लेखक जैक ट्राउट समेत हजारों लेखक शामिल हैं। ये बेस्ट सेलर लेखक हैं, जिनकी प्रसिद्धि सारे विश्व में प्रसिद्ध हुई। जिन्होंने वित्तीय साक्षरता, फाइनेंशियल एप्टीट्यूड, फाइनेंशियल फ्रीडम, कैश फ्लो एनेलेसिस, वर्किंग मनी जैसे जुमलों को सबकी जुबान पर चढ़ा दिया। आखिरकार उन्होंने चार्वाक संस्कृति को ही नए ढंग से परोसने का प्रयास किया है।

आखिर इसमें है क्या, जिसे इतनी ख्याति मिली। इसकी दिलचस्प नसीहतें हैं-

एक : इतनी पूंजी एकत्र कर लो कि उसका व्याज तुम्हारी नियमित आय बन जाए और तुम किसी भी काम को करने से सदा ही मुक्त हो जाओ तथा शारीरिक श्रम की आवश्यकता ही न पड़े।

दो : ऐसा व्यवसाय करो, जिसमें न तो मेहनत करनी पड़े और न ही उपस्थिति की आवश्यकता हो। बॉन्ड, शेयर, प्रतिभूतियां, डिबेंचर, म्यूचुअल फंड यूनिट, विभिन्न प्रकार की रायल्टी, प्रापर्टी की मिलिक्यत के दस्तावेज आदि कागजी कारोबार की ओर उन्मुख हो जाओ।

तीन : उपभोग छोड़ो, निवेशक बनो। गरीब अपनी कमाई से बेहद जरूरी सामान क्रय करते हैं; जबकि धनाढ्य वर्ग अपनी कमाई संपत्तियां खरीदने में निवेश करते हैं।

चार : विश्व में चार प्रकार के लोग होते हैं-कर्मचारी, कंपनी मालिक, स्वरोजगारी और निवेशक। कर्मचारी एवं मालिक दोनों ही मेहनत करते हैं, परन्तु स्वरोजगारी एवं निवेशक के लिए ऐसी कोई जिम्मेदारी नहीं है, अतः इसी राह पर आगे बढ़ो।

पाँच : टैक्स तो गरीब और कर्मचारी चुकाते हैं। अमीरों की संपत्तियां और

निवेश उन्हें टैक्स से मुक्त कर देते हैं।

छह : पुरानी कहावत है-'मेहनत करो और तरक्की की सीढ़ी चढ़ो।' नई कहावत है-'सीढ़ी को ही अपना बना लो।'

सात : आय के तीन स्रोत हैं-अर्जित आय (अर्न्ड इन्कम), जो कि नौकरी या व्यवसाय से प्राप्त होती है। निश्चेष्ट आय (पैसिव इन्कम), यह प्रापर्टी किराये आदि से आती है। पोर्ट फीलियो इन्कम-विभिन्न मदों से प्राप्त आय। इन स्रोतों में से पहले को छोड़कर दूसरे एवं तीसरे पर आ जाओ।

आठ : अतिशीघ्र काम से निवृत्त हो जाओ एवं वित्तीय आजादी (फाइनेंशियल फ्रीडम) हासिल करो। इसका तात्पर्य है कि काम करने से सदा के लिए मुक्ति।

नौ : शेयर खरीदो और कर्ज लेकर मकान बनाओ।

(34)

यह है आज का वित्तीय दर्शन, जिसके आक्टोपसी पाश ने हमारे देश को भी जकड़ लिया है। इसमें चार्वाक दर्शन की गंध आती है। अमेरिका के पूंजीवादी समाज के एक बड़े हिस्से में इसको अपनाया गया है। उनकी अंतरात्मा इन चीजों से दब गई है और यही कारण है कि ऐसी शिक्षा देने वाली किताबें न केवल बेस्ट सेलर साबित होती हैं, बल्कि वहां ऐसी शिक्षा का एक अलग पाठक वर्ग पैदा हो गया है, क्योंकि अतिशीघ्र अमीर बनने को बेताब, वित्तीय आजादी के लिए अधीर, काम से मुक्ति के लिए बेकार वर्ग तथा स्वप्नलोक का ख्वाब देखने वालों ने इसे बहुचर्चित कर दिया।

इस दर्शन ने अमेरिका के मध्यम वर्ग में ऐसा मानसिकता पैदा की कि अंधाधुंध कर्ज लो और उससे गाड़ी, मकान आदि खरीदो। कर्ज लेने की भारी मांग एवं उसकी कमतर होती अदायगी से बैंकों की हालत खराब हो गई। बैंक दिवालिया हो गए, जिनकी लिस्ट बड़ी लंबी है और यहीं से अमेरिकी अर्थ-व्यवस्था में मंदी की शुरुआत हुई। दरअसल वहां पर कर्ज लेकर निवेश करने की एक विराट संस्कृति का ताना-बाना बुना गया और इसे प्रश्रय एवं प्रेरणा दी इस साहित्य ने। उन्होंने बैंकिंग की दुनिया में भी बेतहाशा कर्ज मंजूर करने की जायज वजहों का अव्यावहारिक तर्कशास्त्र रचा। करोड़ों पाठकों को श्रम और उत्पादन के वास्तविक संबंधों से दूर हटकर शेयरों और बॉन्डों में निवेश के कागजी अर्थशास्त्र में अग्रसर होने की सलाह दी।

परन्तु अपने देश की संस्कृति श्रम एवं ईमानदारी से अर्थोपार्जन की संस्कृति है। अपनी संस्कृति में धन का स्थान धर्म के बाद आता है, जो कि अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। अतः इसके उपार्जन के साधनों को भी अति पवित्र एवं श्रेष्ठ माना गया है। अथर्ववेद में व्यापार को श्री और समृद्धि का साधन माना गया है। व्यापार में सफलता के लिए

दो गुणों की आवश्यकता बताई गई है-1. चरितम्-चरित्र एवं व्यवहार। आचरण की शुद्धता और व्यवहार में निष्कपटता होने से मनुष्य विश्वसनीय होता है। इसके द्वारा उसका व्यापार उन्नति करता है। 2. उत्थितम्-उठना या अध्यवसाय। दृढ़ निश्चयपूर्वक कार्य में जुट जाना अध्यवसाय है। यह दृढ़ निश्चय एवं उत्साह उसे समृद्धि की ओर ले जाता है। **शुनं नो अस्तु चरितमुत्थितं च॥** (अथर्ववेद 3/15/4)

व्यापार में से श्रम एवं चरित्र को ही यदि हटा दिया जाए तो फिर वह व्यापार नहीं होता है, कुछ और हो जाता है। आध्यात्मिक अर्थशास्त्र का सिद्धांत है कि अर्थ के अर्जन का साधन एवं उद्देश्य स्पष्ट एवं शुद्ध होना चाहिए एवं इसमें यथा संभव पारदर्शिता होनी चाहिए, जिससे अर्जन की प्रक्रिया स्पष्ट हो सके। इसमें प्रामाणिकता का होना भी आवश्यक है, क्योंकि यही विश्वास का आधार है और विश्वास के बल पर ही व्यापार का सारा ताना-बाना बुना जाता है। उपार्जित धन का निवेश भी महत्वपूर्ण है। इसके कुछ अंश को जनकल्याण के लिए नियोजित भी करना चाहिए।

अपनी संस्कृति में अर्थ का उपार्जन देखते-देखते अमीर बनने के लिए नहीं किया जाता है, बल्कि इसे मेहनत एवं ईमानदारी से उपार्जित करने का धर्म एवं नीतिपूर्ण ढंग से उपार्जित करने की शिक्षा दी जाती है और इसलिए इसे पुरुषार्थ चतुष्टय में दूसरा स्थान प्राप्त है।

ऋण लेना और देना, दोनों ही हमारे यहां अच्छा नहीं माना जाता है। कहा जाता है कि श्रेष्ठ पुरुष को इससे बचकर रहना चाहिए। अथर्ववेद के सूत्र 6 के 117, 118, 119 में ऋण लेने से होने वाली हानियों की चर्चा की गई है। इसमें बताया गया है कि ऋण लेने वालों को लज्जित होना पड़ता है और ऋण न चुकता होने पर उस पर कर्मबंधन लगते हैं, जो जन्मांतरों तक पीछा नहीं छोड़ते। अतः हमारी संस्कृति में पुरुषार्थ करके, नीतिपूर्वक एवं धर्माचरण के माध्यम से अर्थोपार्जन पर बल दिया जाता है। **आवश्यकता से अधिक अर्थ को किसी की सेवा, सहायता करने या श्रेष्ठ कर्मों में नियोजित करने या फिर उसे सत्यात्र को दान देने की श्रेष्ठतम व्यवस्था दी गई है। अर्थ को जब धर्म से, नीति से अधिक महत्त्व दिया जाता है तो वह अनर्थकारी होता है।** अतः इससे सावधान किया गया है और यही कारण है कि हमारा राष्ट्र आर्थिक रूप से स्वावलंबी है, श्रेष्ठ एवं समृद्ध है। अतः हमें नीतिपूर्वक अर्थोपार्जन करना चाहिए।

संकलित



जानें डिमेंशिया के बारे में

- डॉ० मुरलीधर सी०पी०

‘डिमेंशिया’ शब्द लेटिन के ‘डि’-अलगाव-और मूल शब्द मेंटिस के ‘मेन्स’-दिमाग-से मिलकर बना है। डिमेंशिया विचारशक्ति के लगातार क्षीण होने का नाम है।

संज्ञानात्मक क्षति के विकसित होने का अर्थ है स्थिति का लगातार बिगड़ना। साधारणतौर पर उम्र बढ़ने पर होने वाली शारीरिक क्षति के मुकाबले, डिमेंशिया में यह बहुत तेजी से होती है। यह रोग पक्षाघात के कारण भी हो सकता है और अल्जाइमर से भी।

बीमारी नहीं, यह है लक्षणसंकुल

डिमेंशिया अविशिष्ट लक्षणसंकुल है जिसमें मस्तिष्क का कार्यक्षेत्र प्रभावित होता है जैसे कि स्मृति, भाषा, समस्या को पहचानना, हल करना, ध्यान देना।

अल्जाइमर के समान डिमेंशिया अपने आप में बीमारी नहीं है। शुरू में मरीज के महत्वपूर्ण मानसिक कार्य प्रभावित होते हैं। लेकिन बाद में, व्यक्ति को यह भी पता नहीं होता कि कौन सा दिन है, कौन सा महीना है या कौन सा साल है। वह यह भी नहीं जान पाता कि वह कहां है और उसके आसपास कौन है। आमतौर पर डिमेंशिया युवकों से ज्यादा बुजुर्गों को प्रभावित करता है।

क्या हैं लक्षण

- स्मृति-लोप : मरीज दुकान से घर आने का रास्ता भूल सकता है, जगह और व्यक्तियों को भूल सकता है। पहले दिन क्या हुआ यह याद रखना भी मुश्किल हो सकता है।
- चिड़चिड़ापन : मरीज ज्यादा से ज्यादा चिड़चिड़ा हो सकता है क्योंकि मस्तिष्क का भावनाओं को नियंत्रण करने वाला भाग क्षतिग्रस्त हो जाता है।
- बातचीत में कठिनाई : प्रभावित व्यक्ति के लिए बात करना, पढ़ना और मुश्किल हो सकता है।

जैसे-जैसे डिमेंशिया बढ़ता है, मरीज की रोजमर्रा के काम करने की क्षमता खत्म होती जाती है और वह अपनी देखभाल करने के लायक भी नहीं रहता।

डिमेंशिया कारक रोग

- अल्जाइमर रोग : यह डिमेंशिया की एक आम वजह है। अल्जाइमर ग्रस्त व्यक्ति के दिमागी रासायनिक तत्व बदलने लगते हैं और उसकी मस्तिष्क कोशिकाएं समय से पहले ही मरने लगती हैं।
- पक्षाघात-रक्तवाहिनी बाधा : रक्तवाहिनी नसों और धमनियों की समस्या है यह। हमारे मस्तिष्क को ऑक्सीजन से भरपूर खून की जरूरत होती है। अगर किसी कारणवश ऐसा नहीं हो पाता तो अचानक डिमेंशिया के लक्षण दिखाई देने लगते हैं। पक्षाघात के हलके दौरों का असर दिखाई नहीं देता जबकि जोरदार दौरों की वजह से डिमेंशिया हो सकता है।
- लेवी बॉडीज के साथ डिमेंशिया : मस्तिष्क कोशिकाएं ही स्नायु कोशिकाएं हैं। मस्तिष्क में, यदि, गोलाकार ढांचा विकसित हो जाए तो मस्तिष्क के ऊतक-टिश्यु-क्षतिग्रस्त हो जाते हैं। इससे मरीज की स्मृति, ध्यान और बोलने की शक्ति पर असर हो सकता है। लगभग एक से लक्षण होने के कारण डिमेंशिया को पार्किन्सन्स रोग मान लिया जाता है।
- फ्रॉन्टो-टैम्पोरल डिमेंशिया : इसके साथ पिक्स रोग जुड़ा है। मस्तिष्क का सामने वाला हिस्सा क्षतिग्रस्त हो जाता है। इससे पहले बीमार का व्यवहार और उसका व्यक्तित्व प्रभावित होता है और फिर उसकी याद।
- अन्य रोग : सुप्रान्युक्लियर पॉल्सी, कोर्साकोफ सिंड्रोम, बिन्सवेन्जर रोग, एचआइवी और एड्स तथा क्रूजफ़ैल्ट जेकब रोग आदि का भी इस पर असर होता है। जिन्हें पार्किन्सन्स, हंटिंगटन, मोटर न्यूरोन आदि रोग और मल्टिपल क्लिरोसिस है उनमें अकसर डिमेंशिया भी विकसित हो जाता है। एड्स से पीड़ित लोगों में संज्ञानात्मक क्षति तेजी से होती है।

निदान

हालांकि इसके लिए कुछ छोटे छोटे परीक्षण होते हैं पर पूरा निदान तो रोग विशेषज्ञ ही कर सकते हैं।

आमतौर पर निम्नलिखित परीक्षण किये जाते हैं।

- एम एम एस इ : 30 में से 24 से कम अंक आने पर अन्य मूल्यांकन की आवश्यकता होती है।
- सी डी आर
- क्लॉक ड्रॉइंग टैस्ट

जानने योग्य मुख्य बात यह है कि मरीज के अंक उसकी सामाजिक, आर्थिक, शैक्षिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि पर जांचे जाते हैं। परीक्षक को मरीज की वर्तमान शारीरिक और मानसिक हालत को भी ध्यान में रखना चाहिए, कहीं वह हताशा से पीड़ित न हो या कि तेज दर्द से न गुजर रहा हो।

निदान सुनिश्चित करने के लिए ये विशेष परीक्षण किये जाते हैं-

- ब्लड केमिस्ट्री
- एम आर आइ - मस्तिष्क
- सी टी स्कैन
- मस्तिष्क की रेडियोथरेपी

डिमेंशिया का उपचार

ज्यादातर मामलों में डिमेंशिया का कोई इलाज नहीं है। शोधकर्ता ऐसा इलाज ढूँढ रहे हैं जिससे इसका बढ़ना बंद हो जाए। निदानानुसार संज्ञानात्मक और व्यवहारात्मक चिकित्सा भी उपयोगी होती है। कई अध्ययनों से पता चला है कि डिमेंशिया के मरीजों पर संगीत चिकित्सा का अच्छा असर होता है। यह याद रखना जरूरी है कि मरीज की देखभाल करने वाले को विशेष प्रशिक्षण के साथ भावनात्मक समर्थन भी दिया जाए।

कितना आम है डिमेंशिया

- यूनाइटेड किंगडम : दि अल्जाइमर सोसायटी, यूके, का कहना है कि 61 मिलियन जनसंख्या वाले यूके में लगभग 7 लाख लोग डिमेंशिया से प्रभावित हैं। 60 वर्ष की उम्र में डिमेंशिया होने का खतरा 100 में एक को, 70 की उम्र में 100 में 6 को और 80 की उम्र में 100 में 20 को है। विशेषज्ञों के अनुसार दीर्घायु व्यक्तियों में डिमेंशिया होने के खतरे बढ़ रहे हैं। उनका कहना है कि 2021 तक यूके में डिमेंशिया के मरीजों की संख्या 940,000 हो जाएगी।
- भारत : कोई अध्ययन उपलब्ध नहीं है।
- विश्वस्तर पर : दि लॅन्सेट में प्रकाशित एक अध्ययन के अनुसार, सारे संसार में लगभग 24.5 मिलियन लोग डिमेंशिया से प्रभावित हैं। इसमें यह भी बताया गया है कि हर साल 4.6 मिलियन नये रोगी जुड़ेंगे। यह संख्या हर दो साल बाद दुगुनी हो जाएगी और 2040 तक 81.1 मिलियन तक यह संख्या पहुंच जाएगी। जिन विकसित देशों में उम्र लंबी हो रही है, उनमें इस रोग के तेजी से बढ़ने की आशंका जताई जा रही है। □

पुस्तक समीक्षा

‘क्या कहती कवितायें’

54 कविताओं से गुम्फित काव्य संग्रह ‘क्या कहती कवितायें’ के रचयिता युवा कवि किशोर अग्रवाल की कविताओं में जो वैचारिक परिपक्वता और सामायिक विषयों की संवेदनात्मक सूक्ष्म अनुभूति की अनुरंजना में परिवर्धित एवं परिमार्जित अभिव्यक्ति जिस प्रकार की गई है उससे उनके कवि संस्कारों का होना स्पष्ट झलकता है। किशोर जी को अपने साहित्यकार व कवि पिता स्व. हरिशंकर अग्रवाल से काव्य सृजन के गुण विरासत में मिले हैं।

कविताओं की भाषा सहज, सरल, सुबोध व सुगम शब्दों के मात्रात्मक शिल्प में गीत, लोकगीत, कविता, मुक्तक, कन्दमुक्त और गजलात्मकता के लिये हुये गेयता और लयबद्धता को आधार बना कर रची गई है। भाव पक्ष प्रबल हैं तथा कला पक्ष कहीं पर कमजोर हुआ है। कविताओं में कवि की आत्मा, संवेदन शीलता के स्पष्ट दर्शन होते हैं।

किशोर अपनी लेखनी से मात्र वृत्तान्त व दृष्टान्त संयोजन तक न बंधे रहकर जीवन को रहस्यमयी कन्दराओं के अंधेरों को चीरकर एक शोधार्थी की भांति सत्य को उजागर करना चाहते हैं। जीवन और संसार की विषम परिस्थितियों के मध्य मानवता के समक्ष उत्पन्न हो रही विसंगतियों से अभिभूत होकर सरस्वती वन्दना, भक्ति-अध्यात्म, राष्ट्र-प्रेम, जननी, बिटियां, कन्याभ्रूण हत्या, मेहनत कश, अध्यापक, राजनीति, पर्यावरण, प्रदूषण, दीया-बाती, सूरज-चंदा-तारे जैसे अनेक विषयों के मर्म को संस्पर्श करती विविध रचनायें अपना अपेक्षित प्रभाव छोड़ने में पूर्णतः सफल हुई हैं। सोने जैसी माटी, “जिस धरती पर हुआ है पैदा” व ‘क्या कहती कवितायें’, ‘कुछ लोग हैं ऐसे जिन्हें आती है फूलों की महक’, ‘साथी मेरे एक सूरज उगाओ’, ‘हां ! हम कांटे हैं’ जैसे अनेक वाक्यांशों वाली रचनायें प्रतीकों तथा बिम्बों के माध्यम से सटीक व्यंगार्थ प्रस्तुत करती हैं।

प्रस्तुत कविताओं में विचारों और भावनाओं के नये नये प्रयोगों की कुछ बानगी देखें :-

आपस का विश्वास न टूटे, संदेहों से प्यार न छूटे, शंकाओं से कोई न रुटे।

अविश्वास को दूर भगायें, हम सब ऐसा देश बनायें।
सवा लाख से एक लड़ाया, गोविन्द सिंह तब नाम कहाया,
हिन्दूधर्म की रक्षा के लिये, पुत्रों ने भी शीश कटाया।
भूखे बच्चों की सिसकारी, सुन व्याकुल होती महतारी।
खाली बर्तन पटक रही है, आंसू अपने गटक रही है।
धरती धरती धीर है संकट भी गम्भीर है,
काटे वन आई विपदा, मन में उठती पीर है।

कुल मिलाकर पुस्तक आकर्षक, मनोहारी, पढ़ने योग्य तथा संग्रहणीय है। कवि चूंकि भारत विकास परिषद् से 1988 से जुड़े हैं अतः इनकी कविताओं में देश प्रेम और राष्ट्र भक्ति की झलक स्पष्ट दिखाई देती है।

संपादक

(37)

सच्ची सेवा

अगर तुम अपनी अंतर की शक्ति को पहचान जाओ, तो जनसेवा के लिए तुम्हें कोई गद्दी या दर्जे की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। बिना किसी औपचारिक पद के तुम कहीं बेहतर सेवा कर सकते हो जैसे कि महात्मा गांधी ने किया। अक्सर शासक सुधारक नहीं होता है और सुधारक शासक नहीं होता। निरक्षरता के कारण जनता का मुख्य प्रेरणा स्रोत उसकी भावना होती है। अपने छोटे-छोटे फायदों के लिए राजनीतिक दल व धार्मिक नेता उसकी भावुकता का गलत इस्तेमाल करते हैं। इससे निपटने का एकमात्र रास्ता वैज्ञानिक और आध्यात्मिक शिक्षा है। अधिकांश नेता सच्ची सेवा की शिक्षा से वंचित हैं।

श्री श्री रविशंकर

Prakash Amte



- Atam Dev

If you really know the fascinating story of Amtes, you cannot but feel humbled by the extraordinary devotion and sacrifice with which they have served the tribal brethren. It is astonishing that not one, two but three generations of Amtes have subsumed themselves in serving the tribals whom the governmental agencies had ignored even after years of Independence as being hunters and wild.

Baba Amte, who had won the Ramon Magsaysay Award in 1985 for his contributions to community service, died in 2008. The same year his son Prakash and his daughter-in-law Mandakini (then aged 60 and 62 respectively) were also declared winners of the Magsaysay Award for their social work. The couple have been doing work among the tribals at Bhamragarh in the thickly-wooded, Naxal-infested district of Gadchiroli in Maharashtra.

In 1973, barely a year after he had undergone surgery for his back problem, Baba Amte moved to Hemalkasa, a place deep in the forests about 350 kilometers south of Nagpur. He liked being among the adivasis. Traveling from village to village he began to work for improving health among the Madia Gonds. About a year later, Prakash cut short his degree in general surgery and joined the project in Hemalkasa. He came with his adopted sister Renuka and his new bride, Mandakini, an anaesthetist and the daughter of a RSS pracharak from Nagpur - not exactly conventional material for the unorthodox life. They had nothing but two thatched huts to live in, and the fierce jungle around. Baba and the others moved back to other urgent projects scattered across the country. Prakash and Manda and Renuka stayed with a small band of volunteers.

The young couple settled in a doorless hut without a telephone or electricity or privacy. They practiced medicine beside the road and warmed themselves by a wood fire at night. The Madia Gonds, shy people and suspicious of outsiders, spurned their help at first. Years after independence, the Madias were still living in a pitiable condition. As huntergatherers, they had little access to regular food, and almost no healthcare - barring the whimsy of witchdoctors. Malaria, tuberculosis, diarrhoea, whooping cough, gangrene, ulcers and malnutrition raged among them. The sight of strangers sent them scuttling like a startled deer.

(38)

Prakash and Mandakini learned their language and patiently gained their trust. The miraculous cures of an epileptic boy with terrible burns and a man near death from cerebral malaria turned the tide. "Once a patient is cured," says Prakash, "he comes back and brings four new patients." Today Hemalkasa runs a 50-bed hospital and an OPD that treats over 40,000 Madia tribals a year. All of this free of charge. It is a regional center for mother-child welfare and health education. Its "barefoot doctors" bring first aid to outlying villages.

It has a residential school up to Class XII for 650 Madia boys and girls. The school had a tough beginning. Initially the Madia Gonds were reluctant to send their children to the school. However, they were persuaded to send their children to the residential school. In time, the school prospered and became a center for both academic and vocational education. Among its graduates are the Madia Gonds' first doctors and lawyers and teachers as well as officials, office workers, and police. According to Prakash more than 90 percent of the students have come back to serve in the community.

Education brought transformation in the attitudes and confidence of the the Madia Gonds. They would now protest against the corrupt forest officers and started asserting their rights and settled their disputes themselves rather than permitting the corrupt officials to exploit their ignorance.

The Amtes have used the school at Hemalkasa to introduce the Madia Gonds to settled agriculture - growing vegetables, fruits, and irrigated grains organically - and to encourage them to conserve forest resources. There is also an animal orphanage that houses an

astounding range of wild animals from leopards to deer and owls: all of them personally looked after by Prakash and some helpers.

Simplicity and respect guide the Amtes' work with the Madia Gonds. Prakash wears only a banyan and white shorts as he goes about his work, so as not to identify himself with "well-dressed" outsiders. Where applicable, the couple incorporates tribal cures in their medical practice. In school, children perform tribal songs and dances.

Life in Hemalkasa has always meant a continuous and present danger. It is like walking on a tightrope between Naxal guns and state suspicion, near fatal accidents and bouts of ill-health. Ask him what kept him in Hemalkasa through all this, though, and his response is instinctive and quick. "Manda's companionship - and the people's faith. That is what keeps us here. I have never seen such tolerance for pain. They come to us from a radius of 200 kilometres, we try to help them. Sometimes when I cut their wounds, the pus sprays onto my face and body. We never had gloves but it never mattered. When I watch their wounds - black, poisonous, foul-smelling - slowly turning red and healthy, that is my reward."

The third generation of Amte is Prakash's son Diganth, who is a qualified surgeon, and his wife Anika Sadhale, a gynecologist from Goa who laughingly says she did not just "reply" to the matrimonial, she "applied" for it. The younger son Aniket, who graduated in civil engineering, has taken on the project's administration; and daughter Aarti is enlisted as a nurse. Same is the story of Amte's other son Vikas and his family.

In faraway Anandwan, Prakash's 82-year-old mother Sadhnatai says, "I have no words to describe what Prakash and Manda have done. I feel guilty to think that they relived everything we had already been through, but I don't regret it once." Tai's remembrance bears within it a vast and complex history. A double helix of sacrifice, a double helix of achievement.

(Based on the citation by Ramon Magsaysay Award, "The Quiet Soldiers of Compassion" by Shoma Chaudhury and media reports)

e

Muslim Women and Change

- Asghar Ali Engineer

Most people think Muslim women are forced to wear veil and confined to the four walls of their houses. This is mainly because we read every day in papers that Talibans force women into veil, burn down girls' schools and always portray them wrapped completely in black cloth from head to foot. This is further reinforced by the burqa controversy which erupted in France.

(39)

This image would be justified if all Muslim women followed the strict dress code propounded by Muslim theologians which was evolved in medieval ages and which they continue to justify even today.

It is true that even today some Muslim theologians debate whether women are *naquisul aql* (defective reasoning power) or not but many Muslim women have superseded even Muslim men in several fields. In Saudi Arabia, where women are not even permitted to drive cars, a woman became a licensed pilot and has been flying aircraft.

But there is big difference in what is theologically projected and ground reality. It may not be wrong, if I venture to say: Muslim women have been defying theological code for over a century now.

A century later now, Muslim women have furthered their public achievements. It is true that even today some Muslim theologians debate whether women are *naquisul aql* (defective reasoning power) or not but many Muslim women have superseded even Muslim men in several fields. In Saudi Arabia, where women are not even permitted to drive cars, a woman became a licensed pilot and has been flying aircrafts.

Now we get news from Malaysia that Farah al-Habshi, an engineer by profession, has been appointed deputy weapons and electrical officer, in a spanking new Malaysian warship KD Perak. Today, she has donned white and blue Royal Malaysian Navy uniform. What is interesting is that she also wears hijab to cover her head though not her face. She feels her hijab in no way comes in the way of performing her duties.

Malaysia is an Islamic country and orthodox Ulama wield great deal of control over peoples' lives. Recently, even the Government of Malaysia chickened out when Ulama took stand that Christians in Malaysia cannot use the word Allah in their religious literature or in their newspapers. Muslim women face several problems in that country at the hands of conservative Ulama in respect of family laws.

It is in the same country, a woman has been appointed a naval officer on combat duty. Even in India, women have not won the right to be on combat duty in the Navy or are not permitted to fly fighter planes. They are also not allowed seafaring in warships. Ms. Farah al-Habshi, on the other hand, recently participated in Milan naval exercise along with other women.

Ms. Farah is also highly articulate and answered all the questions put to her by journalists. There are several other examples. Many Muslim women have excelled even in theological fields and quite independently of the traditional theologians. They have shown courage to challenge orthodox Ulama. For example, Amina Wudud of the USA who teaches Islamic Studies in Washington believed women can lead mixed congregation in prayer and she led around 100 persons, men and women in prayer a few years ago and that too on a Friday. She delivered Friday *Khutba* (sermon), quite unthinkable in the traditional Muslim world. It raised a controversy and even Yusuf Qardawi, otherwise, a moderate theologian from Qatar, wrote an article, opposing a woman leading mixed congregational prayer.

Some Kuwaiti women, elected to Kuwait Parliament after great deal of struggle, refused to wear hijab and fought for their right to go to parliament sessions without wearing one. They fought their case upto the Supreme Court of Kuwait and won. More examples can be cited of Muslim women daring authorities for their rights.

But media, which is interested in sensationalising issues, refuses to highlight Muslim women's achievements and continues to portray them as submissive to traditional authorities and meekly accepting their situation. This image of Muslim women has to change and reality, which is much more complex, has to be understood.

This is not to deny that they are facing difficult problems and their liberation is not a foregone conclusion. However, it is also true that many of them are fighting and refusing to submit meekly. What gives hope is their continued struggle and defiance of traditional authorities.

It should be mentioned here that many Ulama and jurists have realised that medieval shari'ah formulations about women cannot be enforced easily any more and some of them like Muhammad Abduh of Egypt, Maulavi Mumtaz Ali Khan of India and Maulana Umar Ahmed Usmani of Pakistan have expressed their serious reservations about traditional theological formulations on women. The determined struggle on the part of Muslim women will force many more theologians to revise their position and take Qur'an, and not medieval theology, more seriously on women's issues.



Oh, man ! A kingdom is within your soul! A king enthroned with sceptre in hand ! why slumber as in grief and tears untold? Awake ! God calls you, rise and understand.

Tricks of The Medical Trade

- Dr. B. M. Hegde

Agree that we should take pride in what modern medicine has achieved in the last one century but, there is also the other side of the coin that we seem to be missing!

Eighty per cent of the world population has no touch with modern medicine, thanks to its prohibitive cost. The hitech stuff is available only to the rich.

This reminds me of the time, exactly a century ago, when George Bernard Shaw beautifully showed the tricks of the trade of the medical profession through his characters in his play *Doctor's Dilemma*.

It is time to see if his ideas of the medical profession have anything to do with reality in today's world of modern medicine.

Let us look at the play as it was one hundred years ago. "Sir Colenso Ridgeon thinks he has discovered a cure for tuberculosis through opsonins. Ridgeon has a limited number of vacancies at his medical Lourdes. He must decide between offering treatment to a decent, impoverished elderly fellow physician or to an artistically gifted young scoundrel. The matter is complicated by middle aged bachelor Ridgeon's attraction to the talented cad's "arrestingly good-looking wife".

"All professions," remarks one of the play's doctors, "are conspiracies against the laity." And Shaw, in addition to debunking medical conscience and conventional morality, introduces an amusing set of conspirators here. Harrumphing Sir Patrick Cullen has been around long enough to be dubious of the variously self-interested medical pontifications of his colleagues. Gentleman's physician, Sir Ralph Bloomfield Bonington, is dangerously cavalier in his attacks on disease, juggling vaccines willy-nilly. And Sir Cutler Walpole thinks the

"cure for everything from TB to toothache is the removal of the patient's nuciform sac."

My efforts to locate the unciform sac in the human anatomy texts have failed so far! Neither do I remember having seen the unciform sac during my student days in the anatomy theatre. Shaw assembled a motley medical army which is almost identical to the usual crowd that one meets today after one hundred years! Through this satire, Shaw was able to stop the cruelty of total colectomies for chronic fatigue syndrome. The medical profession and its journals otherwise could not have stopped Sir Arbuthnot Lane from his surgical heroics!

Thomas Lewis, the then Chief of Sloan Kettering Cancer institute in New York, in his beautiful book, "The Lives of a Cell", has a good advice for all of us. ***"Instead of always emphasizing what we actually know in science, it would be enormously fruitful to focus alternatively on what we do not know. For it is here that the wonders lie. To know is the domain that is safe, where risk taking is no longer necessary. To dwell in it forever is not only to never advance, it is also to promote a deceptive and false view of ourselves as knowing more than we do-of being more powerful than we really are."***

(41)

Now let us take an impartial audit. Fifty nine per cent of improvement in the health scene in the west has come from higher standards of living, better nutrition, control of simple communicable diseases through better sanitation, preventive vaccinations and education while only 3-4 per cent could be attributed to hi-tech medicine.

The war on cancer is anything but won and the future does not look promising either. Our present modalities of treatment of cancer remind us of the way our ancestors used to brand every disease with red hot iron! Even the treatment strategies depend more on who you see and what facilities she has. The only disease mankind has been able to eradicate, small pox, was achieved through very low tech vaccination system that prevailed in India form "times out of mind". Our war against chronic

diseases is anything but started to yield any benefit to the patients.

The big till movers, the cardiac interventions, is another sad story. Nortin Hadler of North Carolina at Chapel Hill is urging the U.S. Medical Establishment to rethink its most basic precepts of cardiovascular care. Bypass surgery, in particular, he says, "should have been relegated to the archives 15 years ago." "People often believe that having these procedures fixes the problem, as if a plumber came in and fixed the plumbing with a new piece of pipe," explains Dr. L. David Hillis, of the University of Texas Southwestern Medical School. "But it fundamentally doesn't fix the problem."

With doctors doing about 400,000 bypass surgeries and one million angioplasties a year in the US alone-part of heart surgery industry worth an estimated \$100 billion a year-the question of whether these operations are overused has enormous medical and economic implications, says Dr. David Waters, chief of cardiology at the University of California at San Francisco.

"There is quite a lot of good evidence for symptom relief," says Dr. Robert Henderson, a cardiologist at Nottingham City Hospital. Critics such as Hadler, on the other hand, emphasize the risks. Not only is there a 1% to 2% chance of dying during a bypass operation, there is a high risk of complications and a 40% chance of cognitive deficits.

Recent studies even raise questions about whether surgery causes the symptom relief. In June 2005, Harvard Medical School associate professor Roger J. Laham reported on follow-up results of a randomised trial looking at laser surgery to improve blood flow. Patients who got the surgery had significantly less pain and improved heart function.

But so did patients who had a sham operation-the equivalent of a placebo. After 30 months the placebo effect was still there. Scans and other tests showed physiological gains in blood flow among only those who thought they had been operated on. A similar large placebo effect might explain "Most of the benefits

that we've seen so far with balloon angioplasty and bypass surgery," Laham says.

Similar comparisons can help pinpoint dubious treatments in the past like the classic case of tonsillectomy. More recently, Dr. James N. Weinstein, chair of orthopaedic surgery at Dartmouth found that people with back pain are up to 20 times as likely to have back surgery in some parts of the country as in others.

At many hospital, cardiac units have become major profit centres. "Out of 100 patients who get a drug-coated stent vs. a baremetal stent, maybe 10 will avoid a repeat procedure," says Dr. Eric J. Topol, chief of cardiology at the Cleveland Clinic Foundation. "But how many will wind up with a heart attack or death? We just don't have that nailed down yet." David Eddy's computer model ARCHIMEDS has scientifically debunked most of our heroic treatment models as useless and might even be dangerous. This is reflected in IOM audit of US medicine.

To have an impartial audit, one should invite researchers to write about our failures as well. We will thus have built a great centenary memorial to Sir George Bernard Shaw. "Knowledge advances not by repeating known facts, but by refuting false dogmas," wrote Karl Popper. The story is not much different in other areas of science. A number of scientists, particularly physicists, have formed a group in the US calling themselves *The Natural Philosophy Alliance*, which concentrates on the dilemmas in the present physics.

"Orthodox physics is in a deplorable state, not unlike the situation before the advent of Kepler's laws when the celestial bodies had to be explained by increasingly more complicated assumptions....All of us feel uneasy at the sight of tremendous masses of non-sense publications which fill bookshelves in libraries....We believe that modern science is built on a foundation of sand and the entire structure seems about to topple." opined David Bergman representing this group. One could verbatim repeat medical science. Patients survive mainly because of the art of medicine and its placebo effect.



(42)

Making India Innovative: Lanuching an Innovation Movement

By
Vigyan Ratna Lakshman Prasad

(Continued from Last Issue)

Launching an Innovation Movement

In order to make India innovative and give impetus to innovation movement, we must create a proper environment for promotion of innovations as well as to organize programmes to encourage persons in rural and urban areas and particularly the student community. The most creative persons are the children and the young ones in any society of the World. Some of the programmes could be launched and organized as under:

- Organize "**National Innovation Day**" every year in each and every educational institution from Primary School stage to University level and hold exhibitions which will unleash creativity of the students.
- Develop scientific temper and scientific attitude amongst the people.
- Discover young science talents through science and technology exhibitions organized at district, zonal and national levels.
- Encourage and inculcate the sprit of inventivity amongst scientists, technologists, inventors, innovators, workers, technicians and others.
- Identify, encourage, help rural artisans to improve their products.
- Provide proper guidance to the country's inventive talents in the most fruitful manner by developing science and technology museums, science parks, science centres.

- Encourage individual innovators having no technical and financial backing.
- Generate ideas which should be pooled in a "**Bank of Creative Ideas**" which may be established at national level.
- Accord proper recognition and honour to inventors making contributions through inventions/innovations. They should also be encouraged by giving financial awards to inspire others to follow them.

An Innovator's Practical Experience

Based on author's practical experince, as an innovator, of making about 20 innovations successfully in the last 20 years and also running a couple of manufacturing units for about 25 years and also having worked for about 20 years in a renowned multi-national company, he has great faith and confidence in inventiveness of our engineers and technologists as well as technicians, skills, semi-skilled and even unskilled workers. Many of them may unfold their innovative skills provided they are properly groomed and motivated. Unfortunately, the employers in India have not yet realized the role and importance of innovations in manufacturing products and processes for improving competitiveness in open market. Sometimes the workers offer every simple solutions to problems faced by the unit which they call as "**Jugad**". It may appear a temporary solution but can be further improved upon and convereted into an effective technology.

(43)

National Innovation Day-A Celebration

Having failed to receive any positive response from the Govt. of Uttar Pradesh and the Aligarh Muslim University despite vigorous persuasion, the author took the initiative and decided to observe and celebrate National Innovation Day every year on 15th Oct., being birthday of Hon'ble Bharat Ratna Dr. A.P.J. Abdul Kalam, a great scientist and innovator. The First National Innovation Day was organized and celebrated on 15th Oct. 2000 in a local educational institution at Aligarh in a very dignified manner.

Subsequently, National Innovation Day is being organized and celebrated for the last 11 years regularly by schools and colleges in urban and rural areas. Fortunately, **National Innovation**

Foundation, established by Ministry of Science and Technology in the year 2000, has also started observing and celebrating 15th Oct. as **Children's Creativity and Innovation Day** for the last 4/5 years to encourage children and grass-roots innovators to unleash their creativity for benefit of local community and country. The **CMS, Lucknow**, the largest school in the world has also joined innovation movement by celebrating 15th Oct. as "**International Innovation Day**" on a more comprehensive and all compassing scale since 2006.

Fortunately, during last 11 years response from some private engineering and technical colleges as well as private institutes of management has been quite encouraging to give impetus to innovation movement. A newly established private university "**Mangalayatan University**" located in rural area, has taken initiative of fostering creativity and developing innovative culture not only amongst the students but also amongst the rural folk around the university area. This is truly a laudable pledge and may inspire other universities and institutes of higher learning to get their students indulged into innovative endeavours for obvious advantages. **Dr. R.A. Mashelkar, Former Director General, Council of Scientific and Industrial Research**, has rightly expressed that innovators do not exist just in formal laboratories but millions of them exist in villages, in homes and on the streets. To encourage community innovation, it is necessary to scout, support, spawn and scale up the grassroots innovations.

The initiatives such as proper and congenial environment, human resource development, proper Institutional framework, adequate financial support and assistance, timely recognition and publicity are essential ingredients for promoting innovation movement on comprehensive scale as under :

A. Environment

- Develop scientific temper and scientific attitude amongst the people
- Discover young science talents through science and technology exhibitions organized at district, state, zonal and national levels every year and give them recognition.

(44)

- Encourage and inculcate the spirit of inventivity amongst scientists, technologists, inventors, innovators, workers, technicians and others.
- Identify and encourage rural artisans to improve their products by applying innovative techniques.
- Provide proper guidance to the country's inventive talents in the most fruitful manner by developing science and technology museums, science parks, science centres.
- Encourage individual innovators having no technical and financial backing.
- Generate ideas which should be pooled in a "Bank of Creative Ideas" which may be established at national level.
- Organize exhibitions and fairs of innovative ideas and products at national and state levels.

B. Human Resource Development

- Involve and develop a large number of highly talented persons with creative mind.
- Stop brain drain of talented scientists and technologists from the country and utilize their services in R&D activities. In USA, they get adequate recognition, publicity and substantial financial awards which they do not get in our country.
- Attract the best students from Indian Institutes of Technology (IITs) with creative mind for R&D programmes in industry.

C. Institutional Framework.

- Encourage R&D organizations for innovative research and development of new products/processes and provide recognition to the efforts of industry towards innovative research and technological developments.
- Develop free, informal and close interaction amongst R&D organizations, industry and technology institutes like IITs.
- Extend special attention to small entrepreneurs with innovative mind having no R&D facilities to develop their talents.

- Encourage small scale industrial units, the backbone of the economy to develop innovative skills.
- Develop a National Information Talent Search System and prepare a National Register of inventions and Innovations.

D. Financial Support and Assistance

- Provide massive investment and support for promotion of R&D activities.
- Create a National Innovation Fund for providing financial assistance to innovators for development, fabrication and testing of models or prototype of inventions/new ideas.
- Offer guidance and financial assistance for patenting inventive ideas.
- Make available international patent research facilities to inventors.
- Provide financial assistance to inventors to commercialize their innovated products/processes both in India and abroad.

E. Recognition and Publicity

- Formulate a national scheme to honour inventors/innovators at national, state and district levels without any distinction.
- Give wide publicity to their inventions/innovations through electronic media, newspapers.
- Celebrate and observe National Science Day; National Technology Day and National Innovation Day every year to create awareness amongst the masses by giving a wide publicity. National Innovation Day may be celebrated on 15 October, being the birthday of India's one of the greatest scientists & innovators, hon'ble Dr. A.P.J. Abdul Kalam.
- Accord proper recognition and honour to inventors making outstanding contributions through inventions/innovations in key areas of national importance. They should also be given handsome financial awards to encourage others to follow them.

(Concluded)



Choose the Quality of Your Life

- N. Srinivasan

Countries, Institutions and individuals-all go through what I term as the "Carmic" Cycle-note the spelling! I refer to the seven "C's" which impact all us collectively and individually.

The first C stands for **Change**. Change is inevitable, inexorable. No country, no institution, no individual is immune to change. This is the universal reality manifesting itself ever since we can remember. The second C refers to the **Complexity** of change. Indeed, while one might be prepared for change, one is often surprised by the complexity of the change. It is like a batsman facing a spin bowler and expecting him to vary his delivery; but he receives the *doorsa* for which he is unprepared. Change and the complexity of change creates, all the time, **Challenge** for all of us. Each one us-be it a parent or a colleague or a boss or an institution or a country-feel challenged today. There is always that extra pressure we all experience.

What causes this? This brings in my fourth C, which stands for **Competition**. We are all facing severe competition in our endeavours. This competition is, in this modern age, coming at us from within and outside our shores. This is the era of global competition. Competition is a challenge we all face at individual, institutional and country level.

What is the counter measure? The antidote to competition is **Competitiveness**-this is my fifth C. We all have to work harder than ever before to become more competitive to stay in the race.

But why do we have to make such efforts? The answer is the sixth C which stands for the **Customer**. An individual, (mother, father, colleague) institution (school, college, company) and country, we all have customers. The customer could be external or internal.

(45)

In this scenario, the only way forward in the competitive world is to take recourse to **Creativity**. This is my final C.

This "Carmic" cycle has been repeating itself through the ages. Only the time and circumstances change.

Quality is not a fixed target. The goal posts keep shifting. The targets keep moving. In fact, Quality is a journey.

Attitudes to Life

Now I will speak about Personal Quality. In my view, Personal Quality is reflected in two key elements.

One, value system. And two, living these values. Quality at the personal level is about doing the right thing even when nobody is looking!

Personal Quality is about being a role model for all those around us. It is not about putting on an act for public consumption and degenerating into unacceptable behaviour when no one is looking. It is about constancy and consistency. In fact, Personal Quality has seven clear facets reflected in the seven letters of the word 'Quality'.

Q stands for Quest, a yearning, desire to seek.

U stands for 'unending', implying a continuing journey.

A stands for "aspiration and attitude"-never failing to stretch.

L stands for "learning"-never stopping to learn at any stage in life.

I stands for "institutionalisation" of quality discipline, behaviour, system and practices-nothing should be ad hoc.

T stands for "techniques and tools" of Quality which can make such a big difference to the way we lead our lives.

Y stands for "you" (not "I").

Success is putting in 100% effort whatever the results. More often than not, however, the result will be excellent.

Tulsi : The Elixir of Life

- D. Muthamizh Vendon Murugavel

Tulsi has been used for thousand of years in Ayurveda for its diverse healing properties. Tulsi is the purest and most sublime plant which has been known and worshipped in india for more than five millennia for its remarkable healing properties. Apart from its religious significance it is of great medicinal significance, and is a prime herb in Ayurvedic treatment. Tulsi is considered to be an adaptogen, balancing different processes in the body, and helpful for adapting to stress.

(46)

Commonly called sacred or holy basil, it is a principal herb of Ayurveda, the ancient traditional holistic health system of India. Tulsi is known as "The Incomparable One". "The Mother Medicine of Nature", and "The Queen of Herbs". Tulsi is native to India, where it often graces shrines and homes as an aromatic perennial shrub. Tulsi is grown as an annual herb in temperate climates. The tulsi plant is pleasing to the eye, with an upright, open and branching form. The fragrance of the leaves is also quite attractive-spicy and complex, often resembling clove. Tulsi is most respected of all household plants in India.

Medicinal Values of Tulsi

- **Healing Power :** The tulsi plant has many medical properties. The leaves are a nerve tonic and also sharpen memory. They promote the removal of the catarrhal matter and phlegm from the bronchial tube.
- **Fever & Common Cold:** The leaves of Tulsi are specific for many fevers. During the rainy season, when malaria and dengue fever are widely prevalent tender leaves, boiled with tea, act as preventive against these diseases.
- **Cough:** Tulsi is an important constituent of many Ayurvedic cough syrups and expectorants. It helps to mobilize mucus

On Greatfulness

- R. N. Chaturvedi

Life is a continuous process of receiving and giving. Even in breathing, without which life would be non-existent, there is taking in of oxygen and giving out carbon di-oxide.

Greatfulness is the sense of acknowledging from the heart the receipt of benefits with considerate feelings towards the benefactor. In a sense, sincere acknowledgement completes the circuit and benefits both the recipient and the giver and the two parties are relieved of the strains that are inevitable concomitants of all acts of giving and taking.

If ungreatfulness is visible in the world on such a wide scale, it is because of diverse factors. The very reasons that brought about the end of gratitude from acts of exchange and the business world, have also worked for germination of the sense of ungratefulness and its escalation on such a wide scale.

Greatfulness disappeared from the domain of exchange because each party gradually began having the lurking suspicion that the other party was without any service motive and was out to exploit him.

And yet the greater the service motive that is detected and identified in a business concern or customer, the greater the goodwill that is built up. Service motive simply means consideration for the interest of the other party as well.

The same is the case with acts of benevolence. Very much depends on the mental make up of the recipients. There are some who have learnt merely to receive and never to give. There are some others who are too self-centred to be conscious of anything else but their self.

There are so many donation and assistance seekers of political parties, social, religious, cultural or educational societies or institutions besides individuals that the donor finds himself overloaded at times by their demands.

Most of these donations and assistance have elements mixed up with consideration of self interest of both positive and negative nature.

The environment is rendered too uncongenial for pure altruistic motives to germinate or thrive in any appreciable degree. Hence persons rendering benevolent service with pure motives are rare.

But yet there are persons who do whatever they do with all sincerity-whether it be in the sphere of employer employee relationship or in dealing with associates or friends or neighbours or even with related by close blood ties.

If that sincerity is either not recognised or not responded or repaid with sincerity, it narrows down the sphere of sincere activity besides doing incalculable harm to the flow of sincerity.

Non-recognition of sincerity, or lack of proper response to it or its repayment with insincerity are all acts of ungratefulness that strike at the roots of the smooth working of society.

It would not be an exaggeration to say that if ungratefulness becomes wide spread, it causes turmoil in society, which seeks remedial measures for the redress of upheavals in vain. Ungratefulness, therefore, is an anti-social act of first magnitude.

The most vital thing that is to be remembered about greatfulness is that it is the natural response of grace which accompanies acts of benevolence. When grace suffers diminution or disappears, greatfulness also disappears.

Gratefulness belongs to the domain of sentiment and grace alone is the cause of its birth and sustenance.

Those who continue to be grateful even after grace disappears have touch of super divinity in them, which is so rare in this world.



इस अंक में.....

अपनी बात		4
Hglwru*v#Uhihofwlrqv		6
Kro #Zlvgrp		8
सेवा की संस्कृति	सुरेन्द्र कुमार वधवा	9
कारपोरेट सोशल रिस्पॉन्सिबिलिटी	सुरेश चन्द्र	:
Frusrudwh#Vrflido#Uhvrsqvlelolw	R1#S1#Vh{hqd	46
Frsrudwh#Vrflido	Gu1#N1N1#Zdgtkzd	4:
Uhvrsqvlelolw 0D#Zlgh#Frqfhs	VIP#Edmch	
स्वतंत्रता का वह स्वर्ग	न्यायमूर्ति बी.एन. श्रीकृष्ण	53
प्राचीन भारत में राष्ट्रीय चेतना	किशोर अग्रवाल	57
राष्ट्रभाषा हिंदी और हम	महेश चन्द्र शर्मा	5;
ईश्वर, ऐश्वर्य की अनुभूति है	प्रदीप कुमार (कनाडा)	64
भारतीय संस्कृति में समन्वय-भावना	लखनलाल मेहरोत्रा	66
शिष्टाचार	प्रो. प्रभुनाथ द्विवेदी	69
ऊंचे लोग, ऊंची बातें	विजय किशोर मानव	6<
मुंशीराम से स्वामी बने श्रद्धानन्द	विनोद बंसल	74
अहिल्याबाई होलकर :	प्रो. प्रभुनाथ द्विवेदी	77
भारतीय इतिहास का गौरवपूर्ण चरित्र		
विज्ञापन का अंधा कुंआ	डॉ. ज्योति सिंह	7:
खादी वर्दी का सच	आर. के. श्रीवास्तव	7<

(48)

मशीनी किताब के युग में	गोविंद सिंह	87
बाल साहित्य एवम् बाल मनोविज्ञान	राजकुमार जैन 'राजन'	89
ग्रामीण भारत में स्वास्थ्य : एक नजर	विनोद कुमार सिन्हा	8<
आउटसोर्सिंग क्या बला है?	हरिकृष्ण निगम	95
धर्ममय अर्थ ही हितकारी होता है	संकलित	99
जानें डिमेंशिया के बारे में	डॉ. मुरलीधर सी.पी.	: 3
'क्या कहती कवितायें'		: 6
Sudndvk#Dpwh	Dwdp#Ghy	: 8
Pxvolp#Zrphq#dqg#Fkdqjh	Dvjkd#Dol##Hqjlqghu	: ;
Wlfnv#ri#Wkh#Phglfdo#Wudgh	Gu1#E1#P1#Khjgh	: 4
Pdnlqj#Lqgld#Lqqrydwlyh#=#	Yljjdq#Udwqd	: 8
Odqxfklqj#dq#Lqqrydwlrq	Odnvkpdq#Sudvdg	
Pryhphqw		
Fkrrvh#wkh#Txdolw #ri#A	rxu#Olih	Q1#Vulqlydvdq
Wkov#=#Wkh#Hol{lu#ri#Olih	G1#Pxxwkdpl}k#Yhqgrq	<5
	Pxuxjdyho	

